
मां - बच्चों ... सिक पत्र
50
8

परम लोभी

एक देश में एक लोभी रहा करता था। उसे पता लगा कि संसार में उससे भी बड़े लोभी थे। यह जानकर कि लोभियों का गुरु होने लायक व्यक्ति एक देश में है, वह उसके पास लालच के नये तरीकों को जानने के लिए निकल पड़ा। वह बहुत दिनों तक पैदल चलने के बाद, गुरु के स्थान पर पहुँचा। गुरु ने उसके आने का कारण जानकर कहा-"पहले आओ, भोजन तो करें।"

तब लोभी ने कहा-"आप फिक्र न कीजिये। मैं साथ रूखी-सूखी रोटी ले आया हूँ।"

"तुम मेरे अतिथि हो।" कहता हुआ गुरु, लोभी को एक दूकान में ले गया।

"अच्छी रोटियाँ हैं क्या?" गुरु ने दुकानदार से पूछा। "हैं भाई, मक्खन की सी रोटियाँ हैं" दुकानदार ने कहा। "हमारे लिये ऐसी रोटियाँ क्यों? रोटी से अच्छा मक्खन ही खरीदेंगे।" कहता हुआ गुरु मक्खन की दुकान पर गया।

"अच्छा मक्खन है, तेल-सा मक्खन" दुकानदार ने कहा। "तो आओ तेल ही जो खरीद लें।" कहकर गुरु ने तेली की दुकान पर पूछा-"क्या अच्छा तेल है?" तेली ने कहा-"साहब, पानी-सा साफ तेल है।"

"तब तो तेल से अच्छा पानी ही है।" कहता हुआ गुरु, लोभी को अपने घर वापिस ले आया और उसने उसको लोटा भर पानी पिलाया।

लोभी का काम पूरा हो गया। वह अपने देश वापिस चला गया।





ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, तब काशी नगर में एक धनी व्यापारी रहा करता था। उसके मित्रविन्दक नाम का एक लड़का था। मित्रबिन्दक बड़ा पापी था। व्यापारी के मरने के बाद मित्रविन्द्रक की माँ ने उसको सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से एक दिन उससे कहा- "बेटा! दान करो। रीति का पालन करो, धर्म का आचरण करो।" परन्तु उसने माँ की एक भी बात न सुनी।

इतने में कार्तिक पूर्णिमा आई। मित्रविन्द्रक से उसकी माँ ने कहा- "बेटा! आज शुभ दिन है। रात-दिन विहार में धर्म का उपदेश दिया जायेगा। तुम पूजा करके, उपदेश सुनकर आओ। वापिस आने पर मैं तुम्हें हजार रुपये दूँगी।"

रुपये के लिये मित्रविन्दक मान गया। वह उपदेश सुनने के लिए गया तो, परन्तु एक कोने में सोता रहा। सवेरे उठकर, हाथ-मुँह धोकर वह घर चला आया। यह सोचकर कि लड़का उपदेशक को साथ लेकर आयेगा, माँ ने दोनों के लिए भोजन बनवा रखा था। लड़के को अकेला आता देखकर माँ ने पूछा- "बेटा, उपदेशक को क्यों नहीं साथ लाये?"

"वे क्यों माँ? मेरा उनसे कोई काम नहीं है।" मित्रविन्दक ने कहा।

भोजन करके, माँ से एक हजार रुपया वसूल कर, वह अपने काम पर चला गया। वह हजार रूपया व्यापार में लगाकर, जल्दी ही उसने २० लाख रुपये कमा लिये।

"इस पैसे को लगाकर, जहाजों द्वारा, मैं देश-विदेश में व्यापार करूँगा और अधिक पैसा कमाऊँगा।" मित्रविन्दक ने सोचा। उसने एक जहाज खरीदा। उस

पर माल लदवाया। विदेश जाने के पहले अपनी माँ से विदा लेने के लिए वह उसके पास आया।

माँ ने सब हाल सुना। उसकी आँखो में तरी आ गई। "बेटा! तुम मेरे इकलौते लड़के हो। तुम्हारे पास इतना रुपया है तो और कमाकर क्या करोगे? समुद्र यात्रा खतरनाक होती है। मेरी बात सुनकर यह यात्रा छोड़ दो। घर पर ही रहो।"



मित्रविन्दक ने माँ की बात न सुनी। उसने व्यापार के लिए विदेश जाने की ही ठानी। माँ ने उसका हाथ पकड़कर बहुत समझाया। मित्रविन्दक, माँ को खूब पीटकर, बाहर चला गया।

उसी दिन उसका जहाज निकला। समुद्र में, सात दिन तक यात्रा ठीक तरह, निर्विघ्न रूप से चलती रही। परन्तु आठवें दिन, जहाज समुद्र में निश्चल-सा खड़ा हो गया। उस दुर्घटना का कारण यह अनुमान किया गया, जहाज़ पर ही कोई था। यह जानने के लिये नाविकों ने हर नाविक का नाम एक एक कागज़ पर लिखा। गोलियाँ बना कर उनको मिला दिया। फिर उसमें से से एक को चुना। उस पर मित्रविन्दक का नाम था। इस प्रकार तीन बार उसी का ही नाम आया।

"आपके कारण हम सब पर आपति आनेवाली है। सिर्फ आपके लिये इतने आदमियों को मरने नहीं दिया जा सकता। इसलिये आप जहाज छोड़कर चला जाइये।" नाविकों ने मित्रविन्द्रक से कहा। उन्होंने एक छोटी-सी डोङ्गी में, उसे छोड़ दिया। फिर देखते देखते, जहाज बाण की तरह चला गया। आँखों ओझल हो गया।

थोड़े दिनों बाद अपनी डोङ्गी में, मित्रविन्दक एक द्वीप में पहुँचा। वहाँ उसे एक स्फटिक महल दिखाई दिया। उसमें चार स्त्री भूत रहा करते थे। वे भूत छः दिन तो दुनियाँ भर का उत्पात करते, फिर सातवें दिन किये पर पछताते। नियम-नियन्त्रण से रहते। मित्रविन्दक ने उन भूतों के साथ एक सप्ताह खूब ऐश-आराम उड़ाये। जब भूतों ने अपना व्रत शुरु किया, तो उसकी वहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई। वह अपनी डोङ्गी में फिर कहीं निकल पड़ा।

जाते जाते, वह एक द्वीप में पहुँचा। उसमें आठ भूत थे। मित्रविन्दक ने उनके साथ भी सप्ताह भर आराम से बिताया और जब ये भी कठोर व्रत करने लगे, तो फिर वह अपनी डोङ्गी में निकल गया।

एक और द्वीप में इसी तरह, उसने सोलह भूतों के साथ समय बिताया, फिर एक और द्वीप में बत्तीस भूतों के साथ उसने आनन्द किया। आखिर वह अपनी डोङ्गी में एक और द्वीप में पहुँचा।

उस द्वीप में एक बड़ा नगर था। उसके चारों ओर एक दीवार थी, और उस दीवार



में चार दरवाजे थे। वह नरक था। पर मित्रविन्दक को वह नरक की तरह नहीं लगा। उसे वह एक सुन्दर नगर-सा मालूम हुआ।

"मैं इस नगर में प्रवेश कर, इसका राजा बनूँगा।" उसने सोचा।

इस नगर में, एक स्थान पर मित्रविन्दक को एक आदमी दिखाई दिया। वह आदमी अपने सिर पर असिधारा चक्र को रखे हुए था। क्योंकि उसकी धार तेज़ थी, और वह भारी था इसलिये, वह उसके सिर में धँस गया था। सिर पर से, लगातार खून बह रहा था। उस मनुष्य का शरीर जञ्जीरों से जकड़ा हुआ था। वह दर्द के कारण कराह रहा था।

यह सब देखते हुए भी मित्रविन्दक ने सोचा कि वह आदमी उस नगर का राजा था। आसिधारा चक्र, मित्रविन्दु को कमल की तरह दिखाई दिया। उसके शरीर की जञ्जीरें उसे आभूषण से लगे। उसका कराहना, उसे गन्धर्व गान-सा प्रतीत हुआ।

मित्रविन्दक ने उस नरक-वासी के पास जाकर कहा-"आप बहुत दिनों से इस



कमल को सिर पर धारण किये हुए हैं। मुझे भी जरा इसे पहनने दीजिये।"

"महाराज! यह कमल नहीं है। असिधारा चक्र है।"

"तुम मुझे यह देना नहीं चाहते, इसलिये इधर उधर की कह रहे हो।" मित्रविन्दक ने कहा।

"आज से मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया है। इसने भी मेरी तरह माँ को मारा होगा। इस पाप का फल अनुभव करने के लिये ही यहाँ आया है।" यह मन ही मन सोच नरक-वासी, असिधारा चक्र मित्रविन्दक के सिर पर रख अपने रास्ते पर चला गया।

स्वर्ग में, बोधिसत्व, इन्द्र के रूप में थे। वे देवताओं को साथ लेकर, नरकों का निरीक्षण करते करते, मित्रविन्दक के पास आये। उन्हें देखकर, मित्रविन्दक ने रोते हुए कहा-"स्वामी। बताइये, इस चक्र से मेरा कब छुटकारा होगा?" वह उनके सामने गिड़गिड़ाया।

इन्द्र ने उसका यों जवाब दिया:

"तेरे पास बहुत रुपया था, पर तूने और चाहा। तेरा लोभ बढ़ता गया। चार, आठ, सोलह और बत्तीस स्त्री भूतों के, साथ तूने मज़ा उड़ाया। मनुष्य को जिस उचित मार्ग पर चलना चाहिये था, तू उनसे दूर रहा। दूसरों ने तेरे हित के लिए अच्छी सलाह भी दी, पर तूने एक न सुनी, स्वयं तूने यह चक्र अपने सिर पर पहना। जबतक तू जीवित है, तब तक तुझे यह चक्र नहीं छोड़ेगा। पाप का फल अनुभव कर।"

यह कह, इन्द्र अपने अनुयायियों के साथ चले गये। मित्रविन्दक, दुख के कारण पथरा सा गया।





[४]

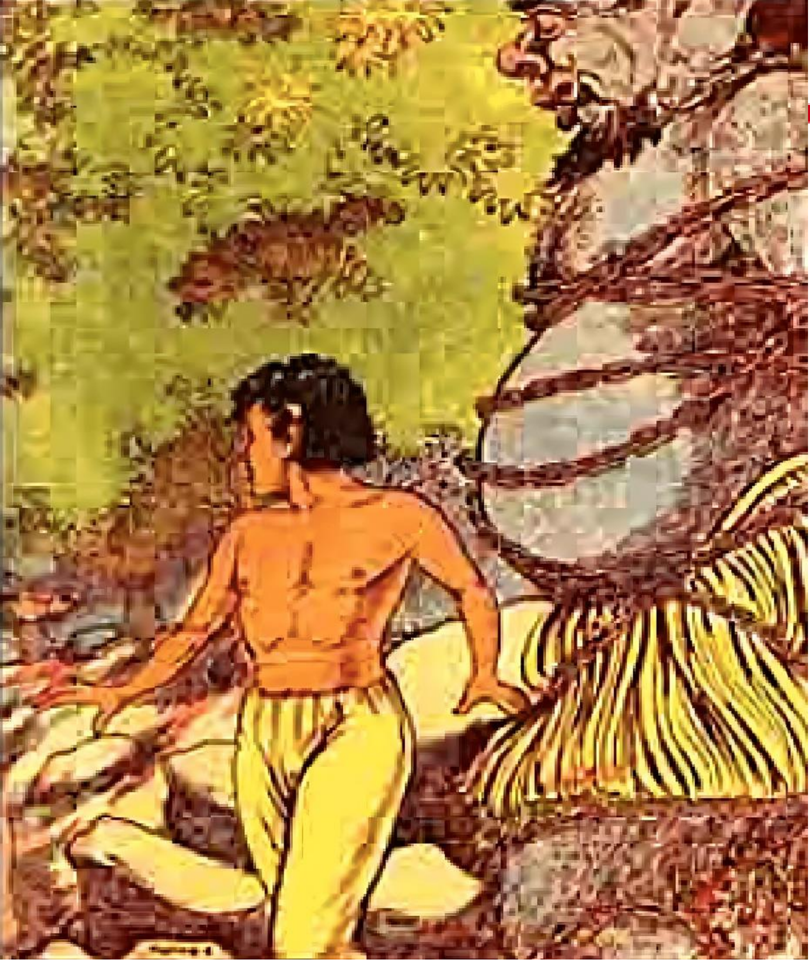
[पद्मपाद ने पिङ्गल को अपने साथ भल्लूक पर्वत आने के लिए कहा। पिङ्गल मान गया और उसके साथ चल दिया। कुछ दूर यात्रा करने के बाद स्नान करने के लिए पिङ्गल जङ्गल में एक नाले के पास गया। वहाँ भल्लूक केतु नाम के व्यक्ति ने, जो पत्थरों से जञ्जीरों से बाँधा गया था, पिङ्गल की मदद माँगी। पिङ्गल उसके पास जा ही रहा था कि पद्मपाद पीछे से चिल्लाया]

पद्मपाद का चिल्लाना सुन, पिङ्गल ने घबराकर पीछे देखा। उसके हाथ से पत्थर फिसलकर नाले में गिर गया। शब्द हुआ।

"पिङ्गल! उसे तुम क्या समझ रहे हो?" पद्मपाद ने कठिन स्वर में पूछा। पिङ्गल ने एक बार भल्लूककेतु की तरफ देखा, फिर अपना सिर न जाने क्यों झुका लिया।

पद्मपाद की ओर सन्देह की दृष्टि से देखते हुए, भल्लककेतु ने पूछा- "महाशय ! आप कौन हैं? क्यों आप इस युवक को पुण्य कार्य करने से रोक रहे हैं?"

"पुण्य कार्य?" कहकर पद्मपाद जोर से हँसा। "क्या मैं नहीं जानता हूँ कि तुम कौन हो?"



भल्लूक केतु जवाब देने ही वाला था कि पिङ्गल कहने हगा-"इसका नाम भल्लूककेतु है। भल्लूक पर्वतों का, जहाँ हम अब जा रहे हैं, यह कभी अधिपति था। किसी मान्त्रिक के कारण उसकी यह हालत हुई है।"।

"हाँ, एक मान्त्रिक के कारण ही इसकी यह हालत हुई है। पिङ्गल! क्या तुम जानते हो कि वह मान्त्रिक कौन था?" पद्मपाद ने पूछा। पिङ्गल ने सिर हिलाकर बताया कि वह न जानता था।

"इस भल्लूककेतु को यहाँ लाकर बाँधनेवाला महा-मायावी ही है।" पद्मपाद ने कहा। और वह भल्लूककेतु की ओर घूर घूर कर देखने लगा।

भल्लूककेतु ने यह सुनते ही, दाँत पीसकर पूछा-"तुम कौन हो? तुम मेरी बात कैसे जानते हो? उस महा-मायावी के बारे में तुम्हें किसने बताया है? कहीं तुम भी तो मान्त्रिक नहीं हो?"

"हाँ, मैं मान्त्रिक ही हूँ। मेरा नाम पद्मपाद है। तुम जैसे बलवान, चालाक, व्यक्ति को जिस ने यहाँ पत्थर से बाँधा है, मैं उसी महा मायावी की समाधि पर हमला करने जा रहा हूँ।"

"सच! क्या तुम उसकी समाधि पर हमला बोलने जा रहे हो? अगर यह सच है तो आप अवश्य महा मन्त्रवेत्ता होंगे। मैं महा-मायावी का जानी दुश्मन हूँ। इसलिए आपको मेरी सहायता बड़े काम की होगी। मुझे छुड़वाइये। मैं आपका गुलाम बनकर रहूँगा।" भल्लूककेतु ने कहा।

"तेरी इधर उधर की बातों का यकीन करने के लिए मैं कोई ऐसा वैसा नादान नहीं हूँ।" पद्मपाद ने कहा।

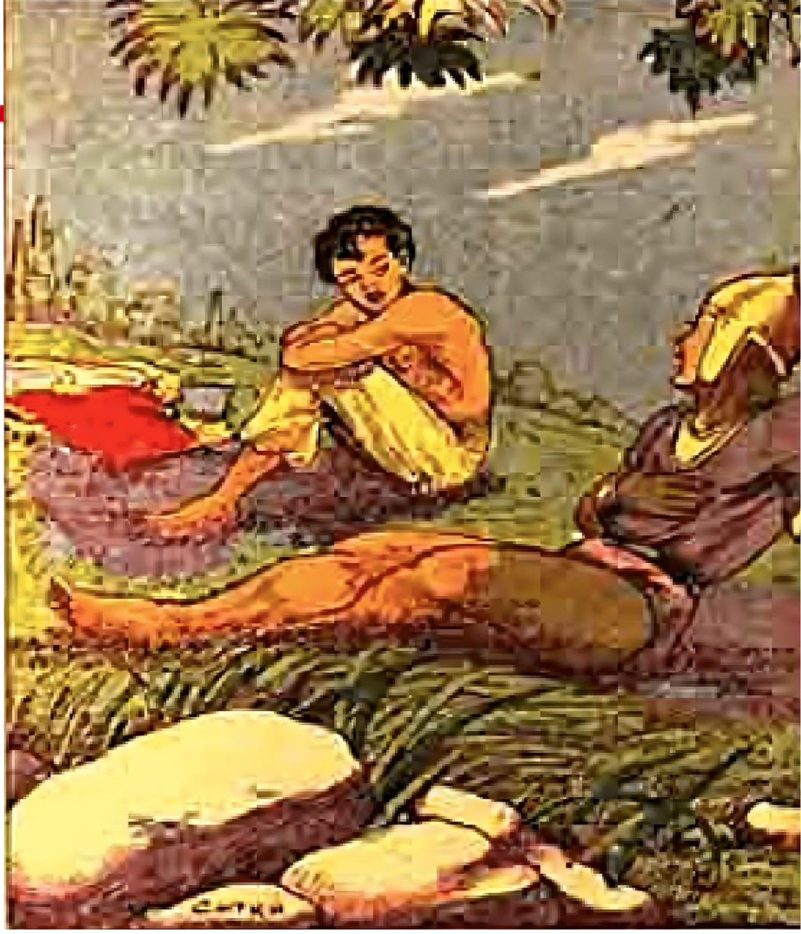
पिङ्गल ने पद्मपाद के पास आकर कहा-"पद्मपाद! मैं समझता हूँ, हम

इसकी रक्षा कर सकते हैं। सुना है, इसे किसी ने शाप दे रखा है कि यदि यह वचन देकर मुकर गया तो उसका सिर फट जायेगा।"

इस बात का विश्वास कर ही तुम आफत मोल लेने के लिए उतावला हो रहे थे। जबतक हम महा-मायावी की मन्त्र शक्ति की वस्तुओं को अपने वश नहीं कर लेते, तबतक हमें इसे नहीं छोड़ना चाहिये। आपत्ति की आशङ्का है। पहले हम उन चीजों को ले लें, फिर हम उसे छोड़कर अपना गुलाम बना लेंगे।" पद्मपाद ने कहा।

"तो महाशय" भल्लूककेतु कुछ कहना चाहता था कि पद्मपाद ने उसकी बात काटकर कहा- 'भल्लूक! हम तेरी चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं आयेंगे। महा-मायावी की समाधि, जिस उजड़े हुए शिवालय में है, उसमें प्रवेश करने के बाद ही हम तुझे मुक्त करेंगे। तबतक तुझे यहाँ ही रहना पड़ेगा।" कहता हुआ वह चला। पिङ्गल भी उसके पीछे चुपचाप चल दिया।

पद्मपाद और पिङ्गल जङ्गल से बाहर आये। सामने के घास के मैदान में



उनको उनके वाहन, गधे नहीं दिखाई दिये। पिङ्गल ने आश्चर्य में चारों ओर देखते हुए पूछा-"हमारे पिशाच वाहन कहाँ हैं? मैं सोच रहा था कि वे इस हरे मैदान में चर रहे होंगे।"

"वे गधे के रूप में भूत हैं, गधे तो नहीं हैं! अगर यह बात है तो भला वे घास-फूस क्यों खायेंगे? वे दोनों खाने-पीने के लिए चले गये हैं। अब हम अपने भोजन के बारे में क्या करें?" पद्मपाद यह कह पेट सहलाता, घास पर धीमे से बैठ गया।



पिङ्गल भी उसके पास बैठ गया। उसने घबराते हुए कहा-"हाँ, पद्मपाद! मुझे भी बड़ी भूख लग रही है। हम साथ खाने की चीजे लाना भूल गये!"

पद्मपाद ने पिङ्गल की ओर देखकर हँसकर कहा-"पिङ्गल! वह जो थैला दिखाई दे रहा है, उसे जरा इधर तो दो।" उसने थैले के लिये हाथ बढ़ाया।

पिङ्गल थैला लेकर, अन्दर टटोलने लगा। उसमें खाने-पीने की चीजें न थीं। वह निराश हो गया। पद्मपाद ने थैला लेकर पूछा-"पिङ्गल! तुम्हें कैसा भोजन चाहिये? कितनी तरह की शाक-सब्जी चाहते हो?"

"अरे! कितनी तरह की शाक-सब्जी? भूखे के लिये मुट्ठी भर चावल और अचार काफ़ी है। इस थैले में तो कुछ नहीं है। खाली है।" पिङ्गल ने कहा।

पद्मपाद ने थैला खोला। उसमें झाँक कर देखा। कोई मन्त्र जपा।

"पिङ्गल, अब देखो।" कहते हुए उसने थैले को पिङ्गल के सामने रखा।

पिङ्गल ने झट अपना हाथ थैले में रखा। उसके हाथ एक गरम गरम चान्दी का बर्तन लगा। उसने उसे बाहर निकाला। उसमें चावल था। उसने आश्चर्य से पद्मपाद की ओर देखा।

पद्मपाद ने हँसकर कहा-"तुम जितने तरह के शाक या खीर चाहते हो, वे सब इस थैले में हैं। बाहर निकाल लो।"

अभी दस मिनट भी न हुए थे कि पिङ्गल ने उस थैले में से पच्चीस शाक-सब्जियाँ और खीर बाहर निकाली। पद्मपाद और पिङ्गल दोनों भूखे तो थे ही, इसलिये उन्होंने जल्दी

भोजन किया। भोजन के बाद थोड़ा आराम किया और फिर यात्रा के लिये तैयार हो गये।

पद्मपाद ने चुटकी भर मिट्टी ली और मन्त्र फूँककर नीचे फेंक दी। यकायक भूमि फट गई। गधे के रूप में दो भूत रेंकते हुए बाहर निकले। पद्मपाद और पिङ्गल उन पर चढ़कर भल्लूक पर्वत की ओर निकल पड़े।

दो तीन घण्टे यात्रा करने के बाद क्षितिज में, उन्हें काला धुआँ मँडराता हुआ दिखाई दिया। पिङ्गल ने उस तरफ इशारा करके पूछा-"वे जो दिखाई दे रहे हैं, वे बादल हैं, या धुआँ?"

पद्मपाद ने थोड़ी देर उस तरफ ध्यान से देखा। फिर कहा-"पिङ्गल, न वे बादल हैं, न धुआँ ही। वे भल्लूक पर्वत की रक्षा करने वाले राक्षसगण हैं। शायद उन्हें हमारे आने के बारे में पता लग गया है। सम्भव है कि वे हमें डराने की कोशिश कर रहे हैं।

पद्मपाद अभी अपनी बात पूरी न कर पाया था कि सामने करीब



पचास गज़ की दूरी पर बादलों-सा काला धुआँ, भँवरें खाता, भूमि में से निकला, और ताड़ के वृक्ष के जितना ऊपर उठा।

पिङ्गल ने डर के कारण काँपते हुए पद्मपाद की ओर देखा। पद्मपाद ने कोई मन्त्र जपा। अपने गधे को उस तरफ भगाया। तत्क्षण वह धुआँ गायब हो गया।

पद्मपाद ने पिङ्गल की ओर मुड़कर कहा-"पिङ्गल! घबराओ मत। यह लो, तुम्हारी रक्षा के लिये यह तलवार देता हूँ। इससे, चाहे राक्षस, किसी भी रूप में तुम्हारे सामने आयें, तुम उनका संहार कर सकते

हो।" पद्मपाद, पिङ्गल को तलवार दे रहा था कि उनके बीच की भूमि काँपने लगी। उनके दोनों गधे दो तरफ भाग निकले। दूसरे क्षण, बड़े बड़े दान्तोंवाला, बड़े बड़े बालोंवाला एक हाथी चिंघाड़ता पिङ्गल की ओर लपका। पिङ्गल डरा नहीं। उसने तलवार लेकर हाथी पर हमला किया। तुरत हाथी दर्द के कारण कराहने लगा। काले धुएँ का बादल चक्कर खाता खाता दूर भाग गया।

"शाबाश पिङ्गल। एक जवान को इसी तरह की बहादुरी दिखानी चाहिये। लोग ठीक ही कहते हैं कि लातों के सामने भूत भी नहीं टिकते। जो तलवार मैंने तुम्हें दी है, उसमें कोई भी मन्त्र शक्ति नहीं है। अगर मैं यह पहले बताता तो तुम इतनी बहादुरी से इस जादू के हाथी का मुकाबला न करते। अब जान गये कि दिलेर को कोई नहीं झुका सकता।" पद्मपाद ने कहा।

पिङ्गल ने अपने हाथ की तलवार को एक बार देखा, फिर वह ऐसा हँसा कि उसके पेट में पड़ बल गये। "क्या इस तलवार में सचमुच कोई जादू नहीं है?



खैर, कोई बात नहीं। मैं इससे हज़ार राक्षसों का भी मुक़ाबला कर सकूँगा। जय, पाताल भूत!" कहता कहता वह तलवार हवा में घुमाने लगा।

पिङ्गल का साहस देखकर, पद्मपाद बड़ा प्रभावित हुआ। उसने पिङ्गल की ओर प्रेम से देखकर कहा-"पिङ्गल! अब हम भल्लूक पर्वत के पास आ रहे हैं। हमें जिस नदी के पास पहुँचना है, वह इन पहाड़ियों की घाटी में है। पैदल चलेंगे तो वहाँ पहुँचते पहुँचते बहुत देर लगेगी। पत्थरों पर चढ़ना-उतरना पड़ेगा। रास्ता मुश्किल है। इसलिये इन भूत गधों को उड़ाकर, पहाड़ों को पार कर वहाँ उतरें।"

पिङ्गल यह मान गया। दोनों गधे हवा में उड़ने लगे। वे पहाड़ों की चोटियों पर से उड़ते हुए नदी के समीप पहुँचे। पद्मपाद और पिङ्गल अपने अपने वाहनों से उतरे। तुरन्त वे कहीं गायब हो गये।

पद्मपाद ने नदी के किनारे बैठकर, नदी के पानी को हिलाया। वह कोई मन्त्र पढ़ने लगा। बड़ी बड़ी लहरें उठने लगीं। और धुआँ भी सर्वत्र छाने लगा। पिङ्गल मूर्ति की तरह, बिना हिले-डुले, वह दृश्य देख रहा



था। थोड़ी देर बाद पद्मपाद उठा और उसने पिङ्गल को थैले में से काँच का मर्तबान लाने के लिए कहा।

पिङ्गल ने काँच का मर्तबान लाकर पद्मपाद के सामने रखा। उसमें मगर के रूप में, महामायाबी के दो शिष्यों की तरफ़ पद्मपाद ने आँखें फाड़कर देखा। उसने पूछा-"कम से कम अब तो अपने असली रूप में आओ! नहीं तो तुम्हें भस्म करके इस नदी में मिला दूँगा।" उसने गर्जन किया। तुरत काँच के मर्तबान के टुकड़े टुकड़े हो गये, और टुकड़े हवा में उड़ गये। काले, कुरूपी दो व्यक्तियों ने पद्मपाद को नमस्कार करके कहा-" महा मान्त्रिक! हम आपके गुलामों के गुलाम हैं। कहिये क्या हुआ है?"

"महामायावी की समाधिवाले टूटे-फूटे शिवालय में जाना है। पहले इस नदी को सुखा दो।" पद्मपाद ने कड़ी आवाज़ में जवाब दिया।

महामायावी के शिष्य, एक दूसरे का मुँह देखकर जवाब देने में आगा पीछा कर रहे थे कि मद्मपाद ने आँखें लाल- पीली करते हुए पूछा- "मेरी आज्ञा सुनी है कि नहीं?"

महामायावी के शिष्यों ने काँपते हुए पद्मपाद को नमस्कार करके कहा- "इस नदी को सुखाने और टूटे-फूटे मन्दिर में प्रवेश करने से पहले यहाँ पिङ्गल नाम के मछियारे का आना जरूरी है।"

"हाँ, देखो। यह ही है वह पिङ्गल।" महापद्मपाद ने यह कहकर पिङ्गल को दिखाया।

महामायाबी के शिष्यों ने पिङ्गल को आश्चर्य से देखकर कहा-"हम आपकी आज्ञा का पालन करते हैं।" यह कह वे तुरन्त अदृश्य हो गये।

(अभी और है)



सर्वनाश



विक्रनार्क फिर पेड़ के पास गया। शव उतार कर, कन्धे पर डाल, श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित वेताल ने कहा-"राजा! तुम किसी और के लिए इतना कष्ट उठा रहे हो। पर इस दुनियाँ में बिरले ही कृतज्ञ होते हैं। अगर हम से थोड़ी-सी गलती हो जाये, तो वे भी हमारे जानी दुश्मन हो जाते हैं, जिनका हमने कभी उपकार किया था। मैं तुम्हें लोहित की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई:

एक जमाना था जब वल्लमपुर व्यापार के लिए मशहूर था। उन दिनों वहाँ धर्मगुप्त नाम का एक अमीर रहा करता था। वह कहीं से आकर बल्लमपुर में बस गया था। वहाँ उसका कोई रिश्तेदार न

था। जब कोई कर्ज़ के लिए आता, तो वह बड़े सूद पर कर्ज़ देता। इस तरह उसने काफी रुपया इकट्ठा कर लिया था। धर्मगुप्त बूढ़ा हुआ। उसके पास पाँच छः लाख रुपये की चान्दी और सोना था। धर्मगुप्त किसी को एक दमड़ी भी न देना चाहता था और वल्लभपुर में उसके कोई बन्धुवान्धव भी न थे, जिन्हें वह देता।

एक दिन शाम को, जब धर्मगुप्त किसी गाँव से घर आ रहा था तो रास्ते में उसे डाकुओं न पकड़ कर मारा। सिर पर बड़ा घाव लगा और वह बेहोश होकर गिर गया। पर डाकुओं को उसके पास से कुछ न मिला।

डाकुओं के जाने के बाद, धर्मगुप्त को होश आई। वल्लभपुर पहुँचते पहुँचते आधी रात हो गई। शहर से बाहर, एक घर का दरवाजा खुला हुआ था।

"भाई! मार दिया है !" कहता धर्मगुप्त उस आदमी के पास गया।

आधी रात के समय, बाहर खड़ा हुआ व्यक्ति एक सुनार था। उसका नाम लोहित था। लोहित ने जो जेवर-जवाहरात बनाकर थोड़ा बहुत कमाया था, पारस पत्थर के



लिए खर्च कर दिया था। वह ताम्बे को चान्दी में, और पीतल को सोने में बदलना चाहता था। इसके लिए बह जाने क्या क्या मूल बूटियाँ, जङ्गल से लाता और तरह तरह के भस्म बनाता।

लोहित की पत्नी मायके चली गई थी। वह दिन भर भट्टी के पास बैठता। केवल ठण्डी हवा के लिए बाहर आता।

पहले तो धर्मगुप्त को लोहित ने नहीं पहचाना। फिर भी वह आगे बढ़कर, बूढ़े को सहारा देकर अन्दर ले गया। भट्टी की आग की रोशनी में उसने धर्मगुप्त को पहचान लिया। "आप हैं?" उसने पूछा। "डाकुओं ने सिर फोड़ दिया है।" कहता हुआ धर्मगुप्त मर गया।

लोहित यह न जान सका कि क्या किया जाये। अडोस-पड़ोस के लोगों को उसने जगाने की सोची। परन्तु उसे डर लगा कि कहीं वे आकर यह न कहें कि तूने ही पैसे के लिए इस बूढ़े को मारा है। धर्मगुप्त तो अब मर ही गया था। आधी रात के समय किसी ने उसको उसके घर में आता भी न देखा था। इसलिए लोहित ने उससे पिण्ड छुड़ाना ही अच्छा समझा।





इस बीच उसे एक और बात सूझी। सुना जाता था कि धर्मगुप्त के पास बहुत-सा धन था। उसके कोई बाल-बच्चे भी न थे, जो उसका धन पाते। सारी सम्पत्ति राजा के खजाने में चली जायेगी। अगर जरूरत हुई तो मैं ही वह धन ले सकता हूँ।

लोहित को अपनी पत्नी और बच्चों पर अधिक प्यार था। उनको सुखी रखने के लिए ही वह पारस पत्थर के फेर में पड़ा था। अब भी उन्हीं के सुख के लिए शव को उसने जब टटोला, तो उसे चाचियों का गुच्छा मिला। चाबियाँ लेकर लोहित सीधे उसके घर गया। तिजोरियों में लाखों रुपयों की चान्दी और सोना था। वह सब एक बोरे में लेकर, वह अपने घर चला आया।

सवेरा होते ही लोहित ने सोना-चान्दी छत पर छुपा दी और उस पर, उपले ढँक दिये। धर्मगुप्त के शव को उसकी चाबियों के साथ, आँगन में गढ़ा खोदकर उसमें दबा दिया।

दो-तीन दिन तक किसी ने भी धर्मगुप्त के बारे में कुछ न पूछा-ताछा। उसके बाद, उसके विषय में तहकीकात शुरु हुई। कई ऐसे लोग थे, जिन्होंने अन्धेरा होने पर, उसे गाँव से निकलते देखा था। पर किसी ने भी उसे बल्लभपुर पहुँचते न देखा था। लोगों ने समझा कि रास्ते में वह कहीं मर-मरा गया होगा। राज-कर्मचारी आये। उन्होंने धर्मगुप्त के घर के ताले तोड़े, घर की तलाशी लेकर, उन्होंने उसकी सम्पत्ति आधीन कर ली। सम्पत्ति को अधिक न पाकर सबको आश्चर्य हुआ। पर कहीं भी ऐसे कोई आसार न थे, जिनसे यह मालूम होता कि घर में चोरी हुई थी।

जल्दी ही लोगों ने धर्मगुप्त के बारे में बातें करना बन्द कर दिया। लोहित ने सोचा कि अब उसे कोई डर न था। मायके से उसकी पत्नी बच्चों के साथ आ गई।

लोहित ने अपनी पत्नी से कहा- "मालूम हुआ है कि काशी में कोई सिद्ध योगी है और उसको पारस पत्थर का रहस्य मालूम है। मैं काशी जाकर छः महीनों में वापिस आऊँगा।"

लोहित की पत्नी, उसे बहुत चाहती थी। "सोना न मिले तो कोई बात नहीं। आप यहीं रहकर पाँच दस रुपये कमाइये। यही हमारे लिए काफी है। मैं आपको काशी नहीं जाने दूँगी।" उसने कहा। वह रोने पीटने लगी।

लोहित को लाचार हो, पत्नी को सच कहना पड़ा। उसने छत पर उपलों के नीचे छुपाई हुई चान्दी को भी दिखाया।

अगर हम कोई चालबाजी न करें, तो हम इस सम्पत्ति का उपयोग नहीं कर सकेंगे। इसलिए मुझे छः महीने कहीं जाने दो। उसके बाद हम महाराजाओं की तरह रह सकेंगे।"



लोहित ने अपनी पत्नी से कहा। वह मान गई।

कहीं ऐसा न हो कि किसी को सन्देह हो, लोहित ने एक परिचित व्यक्ति से मार्ग-व्यय के लिए थोड़ा रुपया उधार लिया। वह काशी के लिए निकल पड़ा। जब तक वह वापस न आया उसके परिवार ने बड़ी गरीबी में दिन गुज़ारे। छः महीने के बाद लोहित घर वापिस आया और उसने छत पर से सोना-चान्दी उतारी। अगले दिन उसने जान- पहचानवालों को बुलाकर, सोना-चान्दी दिखाई और कहा-"काशी में एक सिद्ध योगी की दया से मुझे यह सोना

चान्दी मिली है। अब मेरा और मेरे परिवार का जीवन आसन से कट जाएगा।" सब ने लोहित को बधाई दी। लोहित ने मकान, जमीन, बाग़-बगीचे बगैरह खरीदे। जिन्दगी आराम से कट रही थी। राजा के एक कर्मचारी को लोहित की ज़मीन-जायदाद पर लालच हुआ। इस कर्मचारी की एक सुन्दर लड़की थी। उस लड़की का उससे विवाह कर, वह लोहित को पहली पत्नी से दूर करना चाहता था। उसने लोहित को अपने घर बुलाकर, अपनी लड़की को दिखाकर कहा-"यह लड़की तेरे सिवाय किसी और से शादी नहीं करना चाहती।"

वह राज- कर्मचारी बड़े घराने का था। उसकी लड़की बहुत सुन्दर थी। इसलिए लोहित विवाह के लिए मान गया।

कल शादी थी कि लोहित की पत्नी को मालूम हो गया कि उसका पति एक और शादी करने जा रहा था, वह पति के सामने रोई धोई।

"जब सब प्रबन्ध हो गया है तो अब कैसे शादी रोकी जा सकती है? मुझे नत सताओ।" लोहित ने कहा।



यह जानकर कि पति का उस पर से प्रेम हट गया है, लोहित की पत्नी पागल हो गई। उसने न आगे देखा, न पीछे। तुरत मन्त्री के पास जाकर उसने कहा-"हुजूर! कुछ समय पहले, मेरे पति ने धर्मगुप्त को मारकर उसकी सारी सम्पत्ति ले ली थी। धर्मगुप्त के शव को हमारे आँगन में ही गाड़ दिया था। अगर आप चाहें तो उसे खुदवा सकते हैं।"

मन्त्री ने तुरन्त राज-सैनिक भेजे। उन्होंने लोहित के आँगन में खोदकर धर्मगुप्त के शव को निकाला। राज-सैनिक लोहित को पकड़कर ले गये। अदालत में लोहित ने जो कुछ गुज़रा था, बता दिया। पर किसी ने उसका विश्वास न किया। राजा ने हुकुम दिया कि लोहित को फाँसी पर चढ़ा दिया जाये।

लोहित की सारी सम्पत्ति राजा ने स्वाधीन कर ली। लोहित को फाँसी दे दी गई। पश्चात्ताप में, लोहित की पत्नी, उसके साथ चिता पर सती हो गई। लोहित के लड़के लावारिस हो गये।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा -"राजा! लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का



कारण कौन था? क्या यह उसकी पत्नी थी, जिसने पति को किसी और स्त्री से विवाह करता देख, ईर्ष्या में उस पर दोषारोपण किया था? या धर्मगुप्त का धन लूटनेवाला लोहार स्वयं ही था? या राजा, जो यह न जान सका था कि लोहित ने हत्या न की थी, और जिसने उसे फाँसी दे दी थी? अगर जान-बूझकर इन प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का कारण उसकी पत्नी न थी। क्योंकि वह पति को प्रेम करती थी, इसलिए ही उसको इतनी ईर्ष्या हुई थी। वह अपने पति को दूसरी शादी करने से रोकने के लिए, जो कर सकती थी, उसने वही किया। पति की मृत्यु पर सन्तुष्ट नहीं हुई। लोहित की गल्ती भी नहीं है। यह ज़रूर सच है कि उसने धर्मगुप्त के धन की चोरी की थी। पर तब धर्मगुप्त मर चुका था। उस सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न था। अगर थोड़ा समय वह ओर जीता तो शायद स्वयं वह अपनी सम्पत्ति उसे दे देता। राजा की गल्ती भी नहीं है। गवाही ऐसी थी कि उन्हें विश्वास करना पड़ा। ख़ैर, लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का कारण सचमुच पैसा था। उस पैसे के कारण ही लोहित ने धर्मगुप्त की हत्या की थी। उस पैसे ने ही दूसरे विवाह के लिए उसे प्रेरित किया था। लोहित की पत्नी को पागल कर, आखिर वह ही उनके सर्वनाश का कारण हुआ।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का मौन भङ्ग होते ही, बेताल शव के साथ फिर जाकर पेड़ पर चढ़ बैठा।

(कल्पित)





वंश - मर्यादा

पहले कभी एक देश में एक ज़मीन्दार रहा करता था। उसका वंश बहुत प्रसिद्ध था। कहा जाता था कि इक्ष्वाकु वंश के समय में उसके पूर्वज राज्य किया करते थे। इसलिए वंश-मर्यादा को निभाने के लिए, जमीन्दार किसी भी तरह का बलिदान करने के लिए तैयार था।

यह जमीन्दार बड़ा नादान था। हमेशा अपने पालतू बन्दर से खेला करता। उसके मुकुन्द नाम का एक ही लड़का था। जमीन्दार की सारी सम्पति का वह ही उत्तराधिकारी था। इस मुकुन्द को राजा की लड़की से विवाह करने की सूझी। उसने पिता से इस बारे में कहा।

"बेटा! चाहे तुम कुछ भी करो, मुझे पसन्द है। पर कोई ऐसा काम न करो जिससे हमारे वंश के नाम पर धब्बा लगे। मैं केवल यही चाहता हूँ।" जमीन्दार ने कहा।

तुरन्त मुकुन्द ने राजा के पास जाकर कहा-"महाराज! मैं आपकी लड़की से शादी करना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं कि हमारा वंश बहुत बड़ा है। इसलिए विवाह के लिए मुहूर्त निश्चय कीजिये।"

राजा ने मुकुन्द से तो कुछ न कहा, पर अपने नौकरों को बुलाकर हुकुम दिया-"इस मूर्ख को बाहर निकाल दो।" राजा के सैनिक मुकुन्द को बाहर ले गये।

यह बात ज़मीन्दार के कान में पड़ी तो वह शर्म के कारण मर-सा गया। उनके वंश का अपमान हुआ था। उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि वे लड़के को उनकी आँखों के सामने न आने दें। फिर उसने

श्री मोहनलाल अग्रवाल



अपने वंश के सब सम्बन्धियों को बुलाकर इस घटना के बारे में बताया।

सब सुनकर, बन्धुओं ने कहा- "कितना अपमान! कितनी बदनामी!"

यह अपमान केवल मेरा ही नहीं है, आप सब का भी है। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे वंश का गौरव बना रहे।" ज़मीन्दार ने कहा।

"पहिले मुकुन्द को घर से बाहर निकाल दीजिये।" एक बन्धु ने कहा।

"फिर आपको उपवास करना होगा। इस अपमान के लिए नरबलि दी जानी चाहिए।" एक और सम्बन्धी ने कहा।

"हाँ, वंश की मर्यादा के लिए किसी न किसी को बलिदान होना ही होगा।" शेष बन्धुओं ने कहा।

अगर मुकुन्द चला जाता और ज़मीन्दार मर जाता तो ज़मीन्दार की सारी सम्पति उन बन्धुओं को मिल सकती थी। इसलिए ही उन्होंने यह सलाह दी थी।

जमीन्दार ने कुछ सोचकर कहा- "वंश-मर्यादा के लिए मर मिटने के लिए मुझे तो कोई आपति नहीं है। पर जिन ज्योतिषियों ने मेरी जन्म-पत्री देखी है, वे सब कहते हैं कि मैं पूरे सौ वर्ष जिऊँगा।"

"जन्म-पत्रियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। भगवान ने किसको कितनी आयु दी है, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।" बन्धुओं ने कहा।

"अच्छा, चूँकि आप कह रहे हैं कि नरबलि की ज़रूरत है, मैं यह देखूँगा कि नरवलि हो।" यह कहकर जमीन्दार ने अपने बन्धुओं को भेज दिया। फिर उसने अपनी पत्नी के पास जाकर कहा-

"हमारे वंश पर एक बहुत बड़ा कलङ्क लगा है। वंश की मर्यादा के लिए किसी न किसी को बलि होना होगा। और मेरी आयु बहुत लम्बी मालूम होती है। अगर तू मेरे बदले में गर गई तो अच्छा होगा। एक लड़के को जन्म दिया ही है। अगर तू वंश की शान के लिए मर गई तो तेरी कीर्ति शाश्वत रहेगी।"

"क्या अभी मरना है?" जमीन्दार की पत्नी ने पूछा।

"कहा है कि देरी करने से अमृत भी विष बन जाता है। यह ले, रेशमी रस्सी! भगवान का नाम स्मरण कर, फांसी लगा ले।" कहकर जमीन्दार ने अपनी पत्नी को रेशमी रस्सी दी।

जमीन्दार की पत्नी बहुत देर तक सोचती रही। अपने नादान पति की सलाह पर उसे मरना बिल्कुल पसन्द न था। वंश-मर्यादा के लिए नरबलि की ही तो ज़रूरत है। उस हालत में अगर किसी की भी बलि दी जाय तो क्या बात है?

यह सोचकर उसने अपने रसोइये को बुलाया। "तुझे एक भेद बताता



हूँ, सुन। मुझे एक स्वप्न आया है। स्वप्न में, पार्वती परमेश्वर ने प्रत्यक्ष होकर कहा-"अगर आज रात ही तुम मर गयी तो अगले जन्म में तुम एक सम्राट की रानी होगी। और जो मेरे साथ मरेगा, वह सम्राट होकर मेरा पति होगा। क्योंकि पिछले जन्म में मैंने कोई पाप किया था, इसलिए मुझे नादान पति मिला है। कम से कम अगले जन्म में तुम जैसा अक्लमन्द पति मिलेगा। इसलिए इस रेशमी रस्सी से फाँसी लगा लो। में भी पाँच मिनट में, विष खाकर मर जाऊँगी।" ज़मीन्दार की पत्नी ने रसोइये से कहा।

रसोइया काँपते हुए हाथ से रेशमी रस्सी को लेकर चला गया।

वह रसोई घर में जाकर सोच रहा थी कि क्या किया जाय कि इतने में गोदामवाले कमरे में कुछ आहट हुई। जब उसने अन्दर जाकर देखा तो जमीन्दार का लड़का, मुकुन्द एक बोरे में चान्दी और सोने के बर्तन डाल रहा था।

"आप हैं हुजुर, यह क्या काम है?" रसोइये ने जोर से पूछा।

"चिल्लाओ मत ! तुन नहीं जानते, क्या हुआ है। मेरे कारण मेरे वंश का अपमान हुआ है। नरबलि की आवश्यकता है। इसलिए में आत्य-हत्या करने जा रहा हूँ। इस बोरे में, बोझ रखकर, गले में लटकाकर नदी में कूद जाऊँगा।" मुकुन्द ने कहा।

"इतनी मेहनत की क्या जरूरत है? यह लीजिये रेशमी रस्सी। छत की गर्डर से लटक कर आराम से फाँसी लगा लीजिये।" रसोइये ने मुकुन्द को रेशमी रस्सी दे दी।

"शाबाश! अच्छी सलाह दी है। तुम जाओ, सोओ। मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँगा।" मुकुन्द ने कहा।



रसाइये ने गोदाम के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया और आराम से जाकर सो गया।

सवेरा हुआ। ज़मीन्दार उठकर अपनी पत्नी के कमरे में गया। उसका मरना तो अलग, वह बड़े आराम से सो रही थी। जमीन्दार ने उसे उठाकर पूछा-"क्या तुम नरी नहीं?"

"नहीं त ! मालूम हैं, हमारा रसोइया कितना विश्वास पात्र है। हमारे वंश की मर्यादा के लिए वह मरने के लिए तैयार है। हम उसका ऋण नहीं चुका सकते।" जमीन्दार की पत्नी ने कहा। परन्तु उन्हें, रसोई घर में, रसोइया चूल्हा जलाता, दिखाई दिया।

"क्या तुम अभी जीवित हो?" ज़मीन्दार की पत्नी ने पूछा।

"मैं क्या करूँ मालकिन! कुँबर साहब ने जबरदस्ती मेरे हाथ से रस्सी छीन ली और कहा कि वे ही गला घोंटकर नर जायेंगे। मैंने बहुत कहा पर उन्होंने एक न सुनी।" रसोइये ने कहा।

जमीन्दार ने गोदाम के कमरे में जो पैर रखा तो उन्हें छत से कुछ लटका हुआ



दिखाई दिया। वह जमीन्दार का पालतू वन्दर था।

"क्या वह लड़का ही है? देखो। " जमीन्दार ने पत्नी से कहा।

"अन्धेरे में ठीक तरह दिखाई नहीं दे रहा है।" पत्नी ने कहा।

इतने में ज़मीन्दार के बन्धु यह जानने के लिए आये कि नरबलि दी गई थी कि नहीं। जमीन्दार उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाकर गोदाम के कमरे में ले गया।

मरे बन्दर को नीचे उतारा गया। जमीन्दार को सन्देह हुआ कि वह मुकुन्द नहीं है। "है क्यों नहीं? सचमुच वह अपका लड़का है। उसने वंश की मर्यादा की रक्षा की है।" बन्धुओं ने कहा। जमीन्दार ने विश्वास कर लिया।

बन्दर का दहन-संस्कार किया गया। वर्ष स्वतम होने से पहले ही ज़मीन्दार भी मर गया। उसकी सम्पत्ति को रिश्तेदारों ने आपस में बाँट लिया।

पिता की मृत्य के बाद, मुकुन्द सम्पत्ति के लिए दूर देश से आया।

उसने अपने बन्धुओं से कहा-"सुना है, आप लोगों ने मेरी ज़मीन-जायदाद हड़प ली है। मेरी सम्पत्ति मुझे लौटा दीजिये।"

"तुम कौन हो?" बन्धुओं ने पूछा।

"मैं ज़मीन्दार का लड़का मुकुन्द हूँ।" मुकुन्द ने कहा।

"उसे मरे तो एक साल हो गया है। हम सब तब हाजिर थे। उसके मरने पर यही कहते सुना गया कि केवल जमीन्दार का बन्दर न दिखाई दिया था। वह शायद तुम ही हो। पर तुम मुकुन्द हरगिज़ नहीं हो।" ज़मीन्दार के सम्बन्धियों ने मुकुन्द को भगा दिया।



नाविक सिन्दबाद

उसका शव देखकर मुझमें कुछ बल आता-सा लगा। ढाढ़स भी बँधा। मैं बड़ी तेज़ी से समुद्र के किनारे भागा। वहाँ मुझे सौभाग्य से कुछ नाविक दिखाई दिये। एक जहाज़ भी लङ्गर डाले हुए था। उन्होंने फल और पानी के लिए जहाज रोक रखा था। मुझे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और वे मुझ पर प्रश्नों की बौछार करने लगे। मैंने अपनी कहानी सुनाई। जब मैंने उनको बताया कि वह बूढ़ा, किस तरह एक भूत की तरह मुझ पर सवार था और कैसे मैंने उससे छुटकारा पाया था, तो उन लोगों ने कहा-"और.... तुम उस बूढ़े के हाथ से ही छूटकर आ रहे हो? उसने कितनों को ही, अपने पैरों से कुचलकर मारा है। तुम ही एक हो जो उससे छूटकर आये हो। तुम्हारा भाग्य अच्छा है।"

वे मुझे अपने जहाज़ में ले गये। कप्तान ने मुझे पहनने के लिये कपड़े दिये। उसने तभी जहाज़ का लङ्गर उठाया, जब उसने पूरी तरह मेरी कहानी सुन ली थी।

CHITRA



कई दिन के सफ़र के बाद हम एक शहर में पहुँचे। कप्तान ने मुझसे कहा कि वह एक बड़ा शहर था, दूर दूर से वहाँ व्यापारी व्यापार करने के लिए आते थे। उसने मुझे यह भी बताया कि क्योंकि उस शहर के चारों ओर लंगूर अधिक थे, इसलिए उस शहर को लंगूरपुर कहते थे।

मैंने सोचा कि शहर में जाने से शायद रोज़ी का कोई रास्ता निकल जाय। इसलिए एक व्यापारी के साथ, मैं भी जहाज उतरकर शहर में गया। मेरे दोस्त व्यापारी ने मुझे एक थैला देते हुए कहा- "इस थैले में नुकीले पत्थर डालकर तुम भी उन लोगों में शामिल हो जाओ, जो झुण्डों में शहर के फाटक से निकल रहे हैं। वे स शहर के पासवाली घाटी में जायेंगे। वह जो वे करें तुम भी करना। तुम्हें ज़रूर फायदा होगा।"

उसकी सलाह के अनुसार मैने थैले मे पत्थर डाल लिये। जब मैं शहर के फाटक के पास पहुँचा तो लोगों का एक झुण्ड बाहर जा रहा था। सबके हाथों में, में थैलों की तरह थैले थे। मेरे मित्र ने उनसे मेरा परिचय कराते हुए कहा-"ये विचारा गरीब है। दूर देश का रहनेवाला है। इसे भी रोज़ी का रास्ता दिखाकर पुण्य कमाओ।"

थोड़ी दूर चलने के बाद, हम एक गहरी घाटी में पहुँचे। उसमें बड़े बड़े पेड़ थे उन पर चढ़ने के लिए कोई भी मनुष्य साहस नहीं कर सकता था। सुना कि उन्हें नारियल का पेड़ कहते हैं, उनके ऊपर नारियल और लंगूर थे।

हम सब पेड़ के नीचे रुक गये। बाकी लोग थैले नीचे रखकर लंगूरों को पत्थर मारने लगे। लंगूर नाराज़ हो उठे और

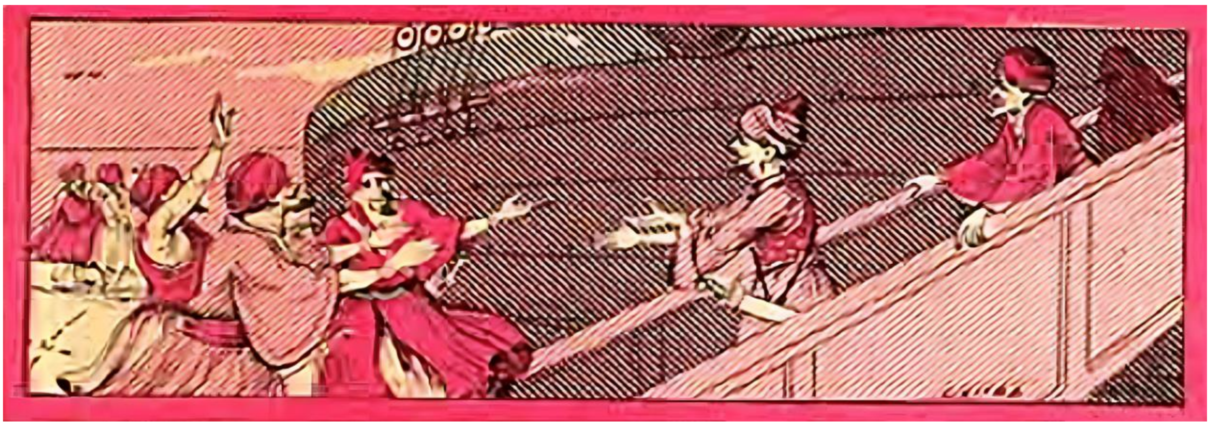


वे नारियल लोगों पर फेंकने लगे। आदमी नारियल चुनकर थैलों में डालने लगे। थैले जब भर गये, तो उन्हें लेकर वे शहर की ओर गये। वहाँ मेरे दोस्त ने, जो नारियल में लाया था, वे खरीद लिये, और उनके बदले मुझे अच्छे दाम दे दिये। इस तरह रोज में घाटी में जाता, नारियल इकट्ठे करके लाता, और उन्हें बेचता। थोडे दिनों बाद मेरे पास इतना रुपया जमा हो गया कि मैं मोतियों के द्वीप में जा सकता था।

जाते हुए मैंने अपने साथ बहुत से नारियल लिए। रास्ते में मैंने नारियल बेचे और उनके बदले में काली मिर्च और लौङ्ग आदि खरीद लीं। मुझे इस व्यापार में इतनी आमदनी हो गई कि मोतियों के द्वीप में, मोती चुनने के लिए मैं मज़दूर आदि भी रख सका।

क्योंकि भाग्य मेरे साथ था, इसलिए मोतियों की सीप में मुझे अच्छी मोतियाँ मिल गई। उन्हें अच्छे दाम पर वहाँ के व्यापारियों को बेचा। अच्छा लाभ हुआ। अब मुझे घर जाने की इच्छा हुई। मैं वापिस घर जाने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करने लगा। रास्ते के बन्दरगाहों में व्यापार करने के लिए, मुझे ज़रूरी माल खरीदना अच्छा लगा। इसलिए मसाले, वगैरह जो वहाँ बहुतायत से मिलते थे, खरीदकर मैंने जहाज़ पर लदवा दिया। उन्हें बेचता हुआ, मैं बसरा होता हुआ यथासमय बग़दाद पहुँचा।

मुझे वापिस आया देखकर मेरे बन्धु-बान्धव और मित्र बहुत प्रसन्न हुए। मेरी क्योंकि काफी आय हुई थी, मैंने गरीबों को दान-दक्षिणा दी। और मैं आराम से अपनी जिन्दगी बिताने लगा।





अयोग्य मित्र

एक देश में एक धनी रहा करता था। उसके एक लड़का था। जब वह बड़ा हुआ तो पिता ने उससे कहा- "बेटा, जीवन में सबसे अधिक बहुमूल्य स्नेह है। पैसा कमाया जा सकता है। यश भी कमाया जा सकता है। परन्तु मित्रों का पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए जैसे भी हो तुम अच्छे लोगों से स्नेह करके उनको मित्र बनाओ।"

तब से वह मित्रों की खोज में लग गया। शीघ्र ही उसके चारों और कई युवक मँडराने लगे। वे उसके साथ बड़े स्नेह से रहते, और ऐसा दिखाते जैसे वे उसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देंगे। थोड़े दिनों बाद पिता ने लड़के को बुलाकर पूछा- "क्या बेटा! तुम्हारा कोई दोस्त बना है अभी तक?"

"हाँ पिता जी! बहुत से दोस्त बने हैं।"

पिता ने आश्चर्य से पूछा-"क्या वे सचमुच अच्छे दोस्त हैं?"

लड़के ने थोड़ी देर सोचकर कहा- "हाँ, उनमें सच्चे दोस्त कम से कम दस होंगे।"

"मैं इतनों दिनों से जीवित हूँ। पर मुश्किल से मेरा कोई एकाध दोस्त हैं। अगर तुमने इस थोड़े समय में ही दस दोस्त बना लिए हैं, तो मुझे विश्वास नहीं होता।" पिता ने कहा।

लड़के ने कहा कि ज़रूरत पड़ने पर वे अपने प्राण भी मेरे लिए दे देंगे।

यह बात आसानी से साबित की जा सकती है।" पिता ने कहा-"पर तुम एक काम करो। एक सूअर को मारो। उसको बोरे में रख, कन्धे पर डाल, छुपे छुपे एक एक दोस्त के

कुमारी ऊषा भटनागर



पास जाओ और उनसे कहो कि तुमने एक आदमी को मार दिया है। अगर यह बात किसी को पता लग गई तो ज़रूर फाँसी की सजा होगी। अगर किसी ने मेरी मदद की तो उसके भी फाँसी लगने की आशङ्का है। फिर तुम उनकी मदद माँगना। तब देखें, क्या होता है।"

लड़के ने वही किया। वह एक मरे हुए सूअर को बोरे में डालकर, एक एक मित्र के पास गया और नदद माँगी। किसी ने भी उसकी सहायता न की।

"इस हालत में, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ? कहीं किसी से यह न कहना कि तुम इस शव को लेकर मेरे घर आये थे। तुम्हारी मदद तो योंही न कर सकता। फिर मुझे भी व्यर्थ इसमें फँसना होगा।" एक मित्र ने कहा।

"मैं तेरे साथ फाँसी पर चढ़ने के लिए तैयार हूँ, पर उससे तेरा कोई फायदा न होगा।" एक और दोस्त ने कहा।

"तुझे इस आफत में पड़ा देख मुझे बहुत दया आती है। तुझे इस जीवन में मैं कभी न भूलूँगा।" एक और मित्र ने कहा।

"जब तुझे फाँसी लगा दी जायेगी, तब मैं तेरे शव का जुलूस निकालूँगा। बड़े धूमधाम से अन्त्येष्टि संस्कार करवा दूँगा।" एक और साथी ने कहा।

लड़के ने पिता के पास आकर सब सुना दिया।

सुनने के बाद पिता ने सिर हिलाते सुए कहा-"मैंने यह पहले ही सोचा था। याद है मैंने कहा था कि मेरे एकाध ही दोस्त हैं। यह भी दे कि वे तुम्हारी किस तरह मदद करते हैं।"

पिता की सलाह पर बारे को कन्धे पर डालकर, उसने पिता के दोस्त के पास जाकर वही कहा, जो उसने अपने मित्रों से कहा था। उस मित्र ने सब सुनकर कहा-"तुम कौन हो, मैं तुम्हें नहीं जानता। परन्तु तुम्हारा पिता मेरा मित्र है। उसके लिए मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

फिर उसने सुअरवाले बोरे को चुपचाप, रात में, अपने आँगन में दबवा दिया। उसने लड़के से कहा- "अब बेफिक रहो, मज़े से इधर उधर घूमो।"

लड़के के द्वारा यह जानकर, पिता ने नौकर से पटवारी को खबर भिजवाई। उसने पटवारी से कहा- "हुजर! मेरे मालिक का लड़का, एक आदमी को मारकर, बोरे में डालकर, फलाने के घर गया है। उसने उस बोरे को अपने आँगन में दबवा दिया है। और इस तरह हमारे मालिक के लड़के की रक्षा की है।"

तुरन्त पटवारी वहाँ गया और उसने आँगन में, बोरा खुदवाकर निकलवाया। रईस के दोस्त ने पटवारी से कहा- "हुज़ूर यह बात सही है कि



यह लड़का हमारे घर आया था और उसने अपना परिचय दिया था। न उससे पहले न उसके बाद मैंने इस लड़के को देखा था। बिना मेरे जाने उसी ने मेरे आङ्गन में यह बोरा गड़वा दिया होगा। मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता हूँ।"

इस बीच में, रईस के लड़के ने अपने पिता के दूसरे दोस्त के पास जाकर कहा-"मैंने गुस्से में एक आदमी को मार दिया था। मेरे पिता के एक दोस्त ने, लाशवाले बोरे को अपने आँगन में गड़वा दिया है, परन्तु यह बात लोगों को पता लग गई है। मुझे जरूर फाँसी की सजा शायद मिले। कुछ भी हो, क्या आप मेरी मदद न कर सकेंगे?"

यह सुनते ही, रईस का दोस्त पटवारी के पास गया। उसने उससे कहा-"सुना है कि फलाने लड़के पर हत्या का अभियोग लगाया गया है। सचमुच उसने हत्या नहीं की है। हत्यारा मेरा लड़का है। एक हत्या करे, और दूसरे को दण्ड मिले, यह अच्छा नहीं है। इसलिए लाचार हो मुझे सच कहना पड़ रहा है। उस लड़के को छोड़ दीजिये और मेरे लड़के को सजा दीजिये।"

यह जानते ही रईस ने अपने लड़के से कहा-"देखा! अच्छा मित्र किस प्रकार मदद करता है? यह न सोचों कि हर कोई मित्र है।" वह यह कहकर पटवारी के पास गया। जो कुछ गुजरा था उसने कह सुनाया। "उस बोरे में आदमी नहीं सूअर है। बोरा खोलकर देखिये।" उसने कहा।

पटवारी ने जब बोरा खोला तो वह चकित हो गया।





एक गाँव में बलभद्र नाम का एक किसान रहा करता था। उसके बहुत से बच्चे थे। बलभद्र रोज जङ्गल जाकर ईन्धन काट लाता था। ईन्धन से जो कुछ पैसा मिलता, उससे थोड़ा बहुत आटा खरीद लेता, बच्चों को रूखा-सूखा खिलाता और खुद खाता। पति-पत्नी, जैसे तैसे गुज़ारा कर रहे थे। भले ही, बलभद्र कितनी ही कोशिश करे पर न उसको, न उसके परिवार को ही पेट भर खाना मिलता।

एक दिन सवेरे कन्धे पर कुल्हाड़ी डालकर, जङ्गल की ओर चला तो बून्दा-बान्दी हो रही थी। जब वह जङ्गल में पहुँचा तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। उसको वहाँ एक उजड़ा झोपड़ा दिखाई दिया। वह उसमें खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगा कि वर्षा का समाप्त होती है।

परन्तु वर्षा समाप्त न हुई। "सूखी लकड़ियाँ सब गीली हो गई होंगी। गीली लकड़ियाँ अगर ले गया तो कोई नहीं खरीदेगा। आज शायद बच्चों को एक रोटी भी न नसीब हो।" यह सोचते हुए, बलभद्र ने झोंपड़े के चारों ओर देखा। एक तरफ उसको एक लकड़ी की मूर्ति दिखाई दी। पास जाकर उसने देखा तो वह किसी देवी की मूर्ति थी।

"देवी की मूर्ति हो या देवता की मूर्ति हो, इससे क्या? वह लकड़ी की मूर्ति है। वर्षा में भीगी भी नहीं है। उसे काटा तो बहुत-सा ईन्धन हो जायेगा। भले ही सारा जङ्गल छान जाऊँ, पर सूखी लकड़ी के मिलने की सम्भावना नहीं है। इसे ही काट-कूटकर ले जाऊँगा। कुछ पैसे बन जायेंगे। बच्चे थोड़ा बहुत खा-पी सकेंगे।"

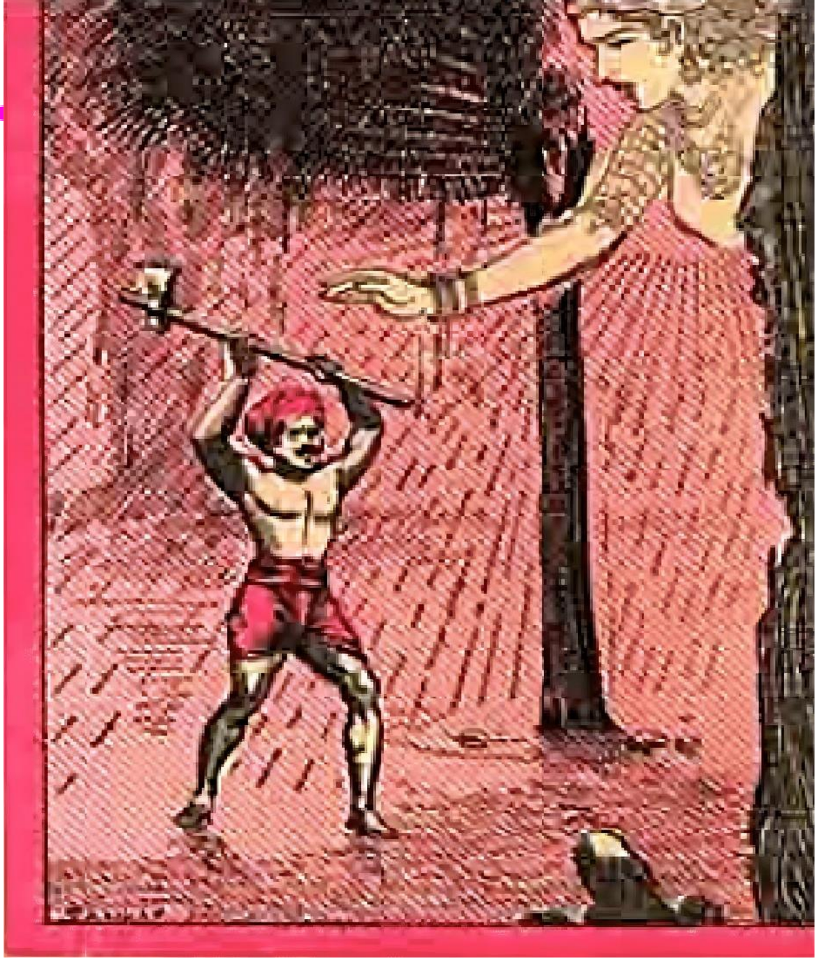
श्री मोहन दास गुप्ता

यह सोच बलभद्र कुल्हाड़ी लेकर मूर्ति के सिर पर नारने ही वाला था कि मूर्ति के अन्दर से आवाज़ आई:

"अरे.... ठहर ! मेरा सिर तोड़ता है? मुझे तूने क्या समझ रखा है?"

बलभद्र ने कुल्हाड़ी नीचे रख दी। मूर्ति को नमस्कार करके उसने कहा-"माँ! क्षमा करो। मैं नहीं जानता था कि तुम इसमें हो। मैंने सोचा था कि तुम कोई ऐसी मूर्ति हो जिसका पूजा-पाठ नहीं होता था। मैं ईन्धन काटने आया था कि वर्षा आ गई। सारा जङ्गल गीला हो गया। और तुम इस मूर्ति में हो। अब क्या है, सारे परिवार को फाका करना होगा।"

"अरे! मैं तेरी गरीबी जान गई हूँ। मुझे तुझ पर बिल्कुल गुस्सा नहीं है। गरीबी इससे बड़े बड़े अपराध भी कराती है। देख, में तुझे एक बात बताऊँगी। तू घर जाकर एक नया घड़ा लेकर, मेरा नाम याद कर, खाली चूल्हे पर रखना। तुरन्त उसमें, तेरे और तेरे परिवार के लिए काफ़ी भोजन पक जायेगा। तुझे और तेरे परिवार को खाने-पीने की कोई दिक्कत न होगी। बाल-बच्चों



के साथ आराम से रहना।" मूर्ति ने कहा।

बलभद्र ने अपने हाथ की कुल्हाड़ी को दूर फेंक दिया। मूर्ति के चरणों में साष्टाङ्ग कर, बिना बारिश की परवाह किये, वह घर चला गया।

उसे खाली हाथ आता देख उसकी पत्नी ने आश्चर्य से पूछा-"लकड़ी काटकर नहीं लाये हो? कुल्हाड़ी कहाँ है? क्या हम सब आज भूखे ही रहेंगे?"

"आज से न हमें लकड़ी की ज़रूरत है, न कुल्हाड़ी ही की। देवी ने हम पर



कृपा की है।" कहते हुए बलभद्र ने जो कुछ जङ्गल में गुज़रा था, सुनाया।

बलभद्र की पत्नी एक नया हँड़ा लाई। उस पर एक ढक्कन रखकर उसने खाली चूल्हे पर रख दिया। जब उसने ढक्कन खोलकर देखा, तो उसमें सब तरह के भोजन थे और पकवान भी। पति-पत्नी, बाल बच्चे, जीवन में पहली बार पेट भर खाकर सो गये।

उसके बाद, बलभद्र के परिवार को खाने-पीने की कभी तङ्गी न हुई। वे हमेशा पडरसोपत भोजन करते। वे न केवल स्वयं ही खाते, परन्तु आसपास के लोगों को भी बुलाकर खिलाते।

बलभद्र के घर की बगल में एक और घर था। उस घर के घरवाली का नाम था मन्दोदरी। मन्दोदरी ने उनको जिन्हें जिन्दगी में पेट भर खाना न मिला था; अच्छा खाता-पीता देखकर सोचा-"हमारे पास इतना सब कुछ है, और हम ही रोज़ पकवान नहीं खा पाते हैं और ये गरीब रोज कैसे मिठाई वगैरह बनाकर खाते हैं? कैसे पाँच दस आदमियों को रोज़ खिला पाते हैं! ये इतने धनी कैसे हो गये?"

उसने बलभद्र के छोटे लड़के को बुलाकर पूछा-"तेरा बाप, जङ्गल जाकर लकड़ी काटकर भी नहीं ला रहा है। ये खाने पीने की चीज़े कहाँ से ला रहा है? रोज तुम्हारी माँ अकेली इतने पकवान कैसे तैयार करती है?"

बलभद्र के लड़के ने मन्दोदरी से साफ कह दिया-"जङ्गल में एक देवी हम पर पसीज गई है। वह ही इन को यह सब देती है। हमारी माँ रसोई नहीं करती, न हमारा पिता ही ईंधन वगैरह कुछ लाता

है।" उसने जङ्गल में जो गुज़रा था उसके बारे में भी बता दिया। यह सुनते ही मन्दोदरी को बड़ी ईर्ष्या हुई। सिर पर कपड़ा डालकर, यह आहे भरती एक कोने में बैठ गई। रसोई भी न की। जब बच्चों ने खाना माँगा तो उन्हें डॉट उपटकर पीटा।

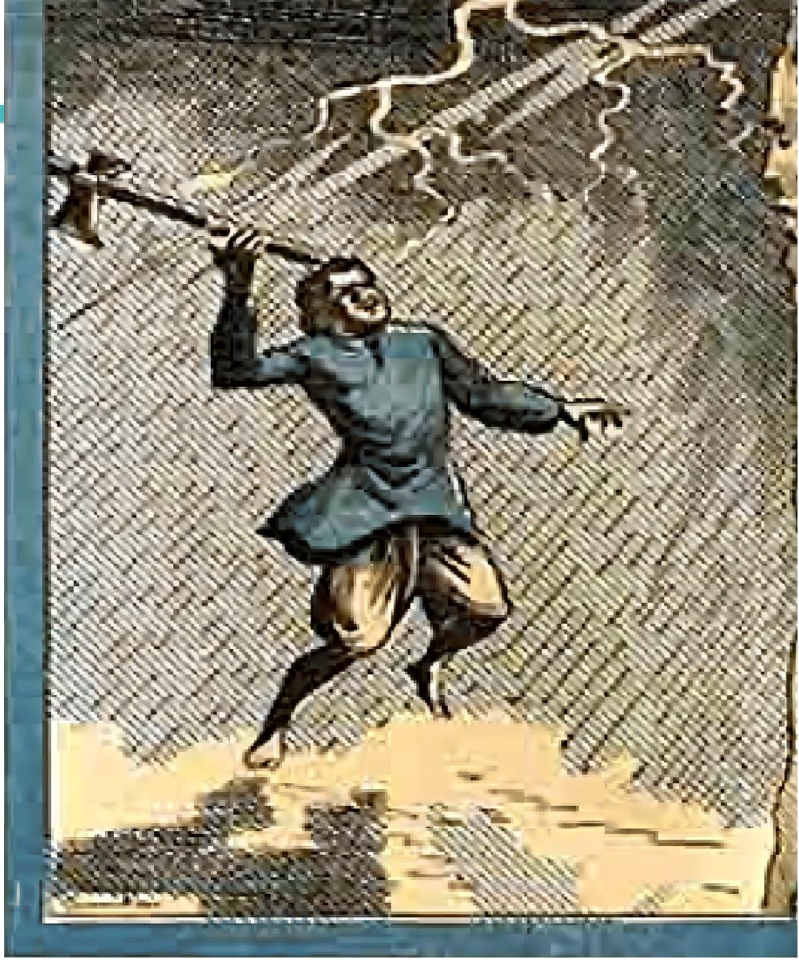
भोजन के समय उसका पति आया। रसोई में चूल्हे को खाली देखकर उसने पूछा-"क्यों! क्या बात है?"

"क्या बात? गाँव का हर ऐरागैरा देवी की कृपा पाकर, बिना हाथ-पैर हिलाये पेट भर, बढ़िया भोजन उड़ा रहा है, और यहाँ दिन रात काम करना पड़ता है।" मन्दोदरी ने कहा।

उससे सारी बात मालूम करके मन्दोदरी के पति ने कहा-"तो अब मुझे क्या करने के लिये कहती हो?"

"अरे पूछते क्या हो? कुल्हाड़ी लेकर जाओ और जङ्गल वाली देवी को धनकी दो कि सिर फोड़ दूँगा। वह तुम्हें वर देगी। में आज से खाना नहीं पकाऊँगी। खाना नहीं पकाऊँगी।" मन्दोदरी ने कहा।

"कहीं देवी-देवताओं का सिर फोड़ा जाता है?" पति ने पूछा।



"तुम्हे कुछ भी समझ नहीं है। जो देवी माँगने पर नहीं देती है, वह मारने पर देती है।"

यह अनुमान कर कि जब तक वह उसका कहा न मानेगा, वह उसे चैन से न रहने देगी, मन्दोदरी का पति कन्धे पर कुल्हाड़ा रखकर जङ्गल गया। ढूँढ़ने के बाद, उसे वह उजड़ा झोपड़ा और देवी की मूर्ति दिखाई दी। मन्दोदरी के पति ने उसके पास जाकर कुल्हाड़ी उठाई।

तुरन्त भूमि काँपी। मूर्ति में से कोई प्रकाश निकला और उसकी आँखें अन्धी

हो गई। वह बेहोश-सा हो गिर गया। उस समय उसको एक भयङ्कर आवाज़ सुनाई दी:

"नीच! मेरे सिर पर ही कुल्हाड़ी उठाता है। मुझे क्या समझ रखा है?" मन्दोदरी का पति काँप उठा। उसका सारा शरीर आग-सा हो गया और मानों लपटें निकलने लगीं।

"माँ! क्षमा करो। अनजाने मैंने यह अपराध किया है। बलभद्र के यही काम करने पर तुमने उसको वर दिया था। मुझे क्यों नहीं वर देते?" उसने पूछा। "बलभद्र जन्म से दरिद्र था। तुम तो दरिद्र नहीं हो। तुम्हें क्यों क्षमा करना चाहिये?" मूर्ति ने पूछा।

"अगर वह दरिद्र था, तो मैं अज्ञानी हूँ। क्षमा करो माँ।" मन्दोदरी का पति रोया-धोया।

एक शर्त पर तुझे इस समय क्षमा करती हूँ। मैंने वर दिया था कि बलभद्र के हांडे में सब कुछ आ जाये। पर घी देना भूल गया था। विचारे ये सब बिना घी के खा रहे हैं। इसलिए रोज उनके घर जाकर तू सेर भर घी उनको देते रहना। अगर तू यह बात मानता है, तो मैं तुझे क्षमा कर दूँगी।" मूर्ति ने कहा।

"तुम्हारी जैसी इच्छा माँ! जो तुम कहोगी वही में करूँगा। परन्तु मेरी गलती माफ करो।" मन्दोदरी के पति ने कहा। वह यकायक फिर स्वस्थ सा हो गया। उसने घर जाकर पत्नी को सारा वृतान्त सुनाया।

"क्या यह यों ही कहा गया है कि स्त्री की बुद्धि प्रलयकारी है। आज से रोज़ बलभद्र के घर सेर भर घी भेजना।" उसने कहा।

मन्दोदरी और कुछ न कर सकती थी। इसलिए उसने वैसा ही करना शुरू किया।





[७]

[ग्रीकों के ट्रोय नगर का पेरा डाले नौ वर्ष हो गये थे। तब ग्रीक लोगों में आपसी फूट के कारण बज्रकाय युद्ध भूमि छोड़कर चला गया। यह देख ट्रोजनों ने श्रीक लोगों का बुरी तरह पीछा किया। एक ग्रीक जहाज में आग भी लगा दी। अब बज्रकाय से तटस्थ न रहा जा सका। वह फिर युद्ध भूमि में आ गया। ट्रोजनों का मुख्या वीर, वीरसिंह बज्रकाय के हाथों मारा गया। भुवन सुन्दरी को उठाकर ले जानेवाले, मोहन ने सूर्य मन्दिर में बज्रकाय की ऐड़ी में बाण मार कर उसे मार दिया।]

बज्रकाय की मृत्यु के बाद, परम्परा के अनुसार, प्रतियोगितायें हुई। दौड़ में, देवमय और चक्र फेंकने में भूघव जीते।

वज्रकाय की माँ तटनी ने कहा कि जो कोई ग्रीक सेना में सब से अच्छा योद्धा होगा, उसी को यह वज्रकाय के अस्त्र-शस्त्र दे देगी। रूपधर और भूधव ने ही, जो वज्रकाय की लाश साहस करके सुरक्षित लाये थे, यह प्रकट किया था कि वे ही उसके आयुधों के योग्य थे। कोई और यह हिम्मत न कर सका।

उन दोनों में कौन शक्तिशाली था, यह राजा निर्णय न कर सका। इसलिए उसने वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध नवद्योत से इस विषय में सलाह माँगी।

"हमारा पराक्रम हमारे शत्रु ही अच्छी तरह जान सकते हैं। हमारे वीरों के बारे में वे क्या सोच रहे हैं, यह जानने के लिए, अपने गुप्तचरों को रात में क़िले की दीवारों के नीचे भेजिए।" नवद्योत ने राजा को सलाह दी।

ग्रीक गुप्तचर, उसकी सलाह के अनुसार, ट्रोय नगर के किले की दीवारों के पास गये। वहाँ उन्होंने कुछ युवतियों को आपस में बातचीत करते हुए देखा।

वे युबतियाँ, वज्रकाय की लाश को ले जाने के बारे में ही बातचीत कर रही थीं। उनकी बातें गुप्तचरों को सुनाई पड़ रही थीं:

"हमारी सेना बाणों की वर्षा कर रही थी, पर भूधव ने बाणों की परवाह न की। वह कन्धे पर वज्रकाय को डालकर ले ही गया। सचमुच उसका साहस और पराक्रम प्रशंसनीय है।" एक ट्रोजन युवती ने कहा।

तुरन्त एक और स्त्री ने कहा- "अगर कन्धे पर लाश ही ढोनी हो तो कोई भी गुलाम औरत वह कर सकती है। उसमें क्या पराक्रम है? अपनी और भूधव की



रक्षा करता हुआ, शत्रुओं का मुक़ाबला करनेवाला रूपधर ही सचमुच बहादुर है।" बाकी स्त्रियों ने भी इसका समर्थन किया। गुप्तचरों ने यह बात राजा तक पहुँचाई। तब राजा ने वज्रकाय के अस्त्रों को रूपधर को ही दिलवा दिया।

यह वस्तुतः भूधव का अपमान था। यदि वज्रकाय जीवित रहता, और उसके सम्बन्धी भूधव का इतना अपमान होता, तो न जाने वह राजा और प्रताप का क्या करता। वह नहीं है, इसीलिए तो राजा ने रूपधर को अधिक पराक्रमी निश्चित किया था।

गुस्से में, मानों भूधव की अक्ल ही जाती रही। ट्रोजनों के चुराये हुए पशु सब एक ही जगह बँधे हुए थे। उन्मत्त हो भूधव ने उन सब को मार दिया। दो सफेद खुरवाले भेड़ो को देखकर उसने सोचा कि उनमें से एक राजा नहीं तो प्रताप था, और उसने उसका गला काट दिया। दूसरे को रूपधर समझकर, उसने कोड़े से मारा। तब उसका उन्माद शान्त हो गया। वह समुद्र के तट के पास गया। और यहाँ छुरी भोंक कर उसने आत्म-हत्या कर ली।





प्रताप ने कहा कि उसके शव का वीरोचित रूप से दहन-संस्कार नहीं किया जा सकता था। इसलिए उसने उसे गाढ़ देने की आज्ञा दी। परन्तु रूपधर को यह बात न जँची। उसने उसके वीरोचित दद्दन संस्कार का प्रबन्ध किया।

वज्रकाय की मृत्यु के कारण ग्रीक निरुत्साहित हो गये थे। दिव्य दृष्टिवाले, कांशुक ने बताया कि लेग्नोस द्वीप के राजा धनघव के पास देवताओं के धनुष बाण, हैं। जब तक ग्रीक वे नहीं ले आयेंगे. ट्रोय नगर को न जीत सकेंगे।

इस काम को करने के लिए राजा ने रूपधर और देवमय को एक जहाज देकर भेजा। लेग्नोस द्वीप, ग्रीक शिविर से, करीब चालीस मील दूर था। ग्रीक वीर जब पहुँचे तो धनधव एक भयङ्कर फोड़े के कारण बीमार था। रूपधर ने, जो बहुत तेज़ था, इधर उधर की बातें बनाकर धनुष-बाण हथियाने की सोची। पर देवमय ने उसकी चाल न चलने दी। धनघव को देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर कहा-"तू ट्रोय चले जाना। उस युद्ध में, तू कीर्ति और लाभ प्राप्त करेगा। तू और वज्रकाय का लड़का नवद्योत, ट्रोय नगर के पतन के कारण होंगे। अगर तुम दोनों से कोई भी न हो तो उस नगर का पतन नहीं होगा।"

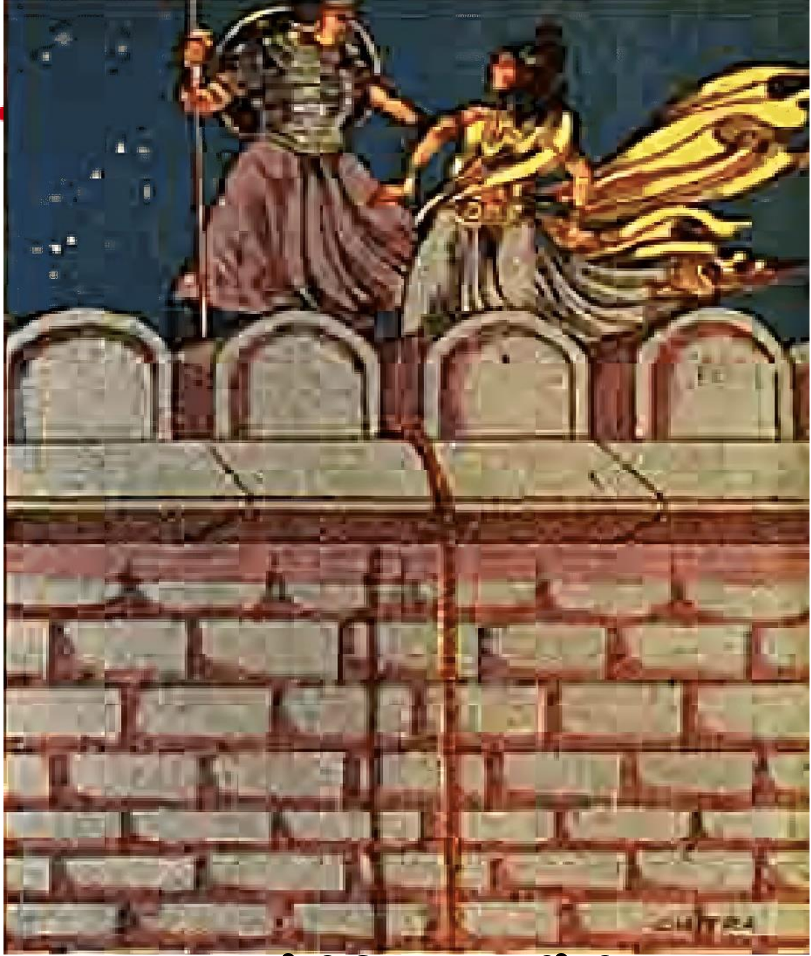
इसलिए धनधव अपने दिव्य धनुष-बाण को लेकर ग्रीक वीरो के साथ युद्ध भूमि में आया। ग्रीक सेना में कई ऐसे वैद्य थे जो शल्य चिकित्सा में प्रवीण थे। उन्होंने धनघव से स्नान कराया। सुलाकर फोड़े की शल्य चिकित्सा की। दवा लगाकर, नागमणि शिला चिपका कर पट्टी बाँधी।

जल्दी ही, धनधव का फोड़ा ठीक हो गया। यह जिस दिन स्वस्थ हुआ,

उसी दिन युद्ध में गया और मोहन को वाण-युद्ध के लिए ललकारा। इस युद्ध में घनघव ने जो पहला बाण छोड़ा तो यह मोहन को लगा ही नहीं। पर दूसरा बाण, मोहन के बायें हाथ में लगा, जिसमें उसने वाण पकड़ रखा था। तीसरे बाण से, मोहन की बाई आँख उड़ गई। चौथे बाण धनधव ने मोहन के पैर की ऐड़ी में मारा।

मोहन को ख़तरे में देखकर, प्रताप ने एक चोट से उसे यम के पास भेजने की सोची। परन्तु मोहन लँगड़ाता लँगड़ाता, प्रताप के हाथ में बिना आये, किले के अन्दर चला गया। मोहन की चिकित्सा के लिए, इडा पर्वत से औषधियों को लाया गया। परन्तु उनके आने से पहले उसने प्राण छोड़ दिया।

मोहन के मरते ही, मोहन के भाई चन्द्र और अरिभयङ्कर, भुवन सुन्दरी को पत्नी बनाने के लिए आपस में लड़ने लगे। क्योंकि अरिभयङ्कर ने युद्ध में अधिक पराक्रम दिखाया था। इस कारण वर्धन ने उसके पक्ष में ही फैसला किया। परन्तु भुवन सुन्दरी



यह न भूल पाई थी कि वह स्पार्टी की रानी थी, और प्रताप की पत्नी थी। वह अपने ग्रीक लोगों से मिलने के लिए, एक दिन किले की दीवार पर चढ़कर, बाहर जाने के लिए रस्सियाँ ठीक करने लगी। उस समय एक पहरेदार ने उसको देखा और उसको पकड़ कर फिर राजमहल में ले गया।

अरिभयङ्कर ने उससे जबर्दस्ती विवाह किया। ट्रोजनों को यह विवाह बिल्कुल न पसन्द था।

चन्द्र को वैराग्य-सा हो गया। वह ट्रोय नगर छोड़कर, इड़ा पर्वत पर रहने

के लिए चला गया। कांशुक ने राजा से कहा कि यदि जैसे तैसे चन्द्र को पकड़ लिया गया तो उससे युद्ध के भेद जाने जा सकते थे। राजा ने रूपधर को चन्द्र को पकड़ने के लिए भेजा।

चन्द्र, जब सूर्य मन्दिर में, हेमा के पिता का अतिथि था तब रूपधर उसको ढूँढता ढूँढता वहाँ पहुँचा।

"मैं जान बचाकर यहाँ भाग कर नहीं आया हूँ। इसी मन्दिर में, मोहन ने वज्रकाय को अन्याय से मारा था। उसका अभी तक प्रायश्चित नहीं किया गया है। यह बात ही मुझे बीन्ध रही है। अगर कहीं दूर, किसी सुरक्षित जगह पर मेरे रहने का प्रबन्ध किया गया, तो में ट्रोय के भेद बता सकता हूँ।" चन्द्र ने रूपधर से कहा।

इस के लिए रूपधर मान गया। "आगामी ग्रीष्म में ट्रोय नगर का पतन निश्चित है। परन्तु उससे पहले तीन बातें होनी चाहिये। एक: पीसा में, धूम्रमुख की भुजा की हड्डी है। यह तुम्हारे शिविर में पहुँचनी चाहिये। दो: नवयोध को युद्ध में उतरना होगा। तीन:



बुद्धिमति देवी की मूर्ति को किले से ले जाना होगा। जब तक वह वहाँ है, आप ट्रोय नगर को नहीं जीत सकेंगे।" चन्द्र ने रूपधर को बताया।

यह भेद मालूम होते ही, राजा ने धूम्रमुख की हड्डी लोने के लिए, कई आदमियों को पीसा भेजा। वज्रकाय का लड़का नवयोष १२ वर्ष का था और स्कैरास में रह रहा था। उसको लाने के लिए, रूपधर, रक्तवर्ण और देवमय जहाज़ों में निकले। नवयोध ने अभी युद्धभूमि में पैर रखा ही था कि उसको अपने पिता वज्रकाय की प्रेतात्मा दिखाई दी। रूपधर ने, वज्रकाय के शस्त्र-शस्त्रों को नवयोध को दे दिये।

यद्यपि आयु में नवयोध छोटा था, तो भी उसने पिता के नाम को, युद्धभूमि में बनाये रखा। उसने युद्ध-व्यूह के बारे में भी, ग्रीक लोगों को सलाह दी।

अब बुद्धिमति की मूर्ति के चुराने की बात रह गई थी। यह काम, रूपधर और देवमय ने स्वयं करने का निश्चय किया। रूपधर ने देवमय से अपने को इस तरह पिटवाया कि सारे शरीर से



खून बहने लगा। वह शरणागत गुलाम की तरह ट्रोय नगर में घुसा। उसको केवल भुवन-सुन्दरी ने ही पहचाना। उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि वह उस वेश में क्यों आया था। परन्तु रूपधर ने उसके प्रश्नों का ठीक तरह जवाब न दिया। वह उसको अपने घर ले गई। उसको नहला-धुलाकर, भोजन खिलाकर उसने कहा-"यहाँ कैदी की तरह रह रही हूँ। मैं अपने देश जाना चाहती हूँ। यह बात सिर्फ मेरी सास ही जानती है। वह मेरी तरफ़ है। तुम अपने कार्यक्रम के बारे में, सब ठीक ठीक बताओ।"

ठीक उसी समय, वर्धन की पत्नी भी आई। रूपधर के तो मानों प्राण ही निकल गये। वह उसके पैरों पर पड़कर गिड़गिड़ाने लगा "मुझे डराइये मत" उसने निवेदन किया। वर्धन की पत्नी ने उसके बारे में किसी को नहीं कहा और सुरक्षित वापिस जाने में भी उसकी सहायता की। जाते जाते, रूपधर ने बुद्धिमति की मूर्ति चुरा ली। दीवार के बाहर, देवमय उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने मूर्ति को उसके कन्धे पर रखा। दोनों चान्दनी में पैदल अपने शिविर की ओर चलने लगे।

बीच में, रूपधर ने मूर्ति को चुराने का सारा श्रेय स्वयं लेना चाहा। वह एक कदय पीछे हटा, और उसने उसको मारने के लिए तलवार उठाई। तलवार की परछाई देखकर, देवमय झट पीछे मुड़ा और अपनी तलवार दिखाकर उसने रूपधर को निरायुध कर दिया। उसके बाद, देवमय, रूपधर के हाथ पैर बाँधकर, उसको लात मारता हुआ शिविर ले गया। (अभी और है)





पहले किसी जमाने में, दिल्ली सम्राट का विजयदास नाम का एक प्रधान मन्त्री था। सम्राट नाम मात्र था। शासन का सारा भार विजयदास पर ही था। इसलिए राजा, सामन्त वगैरह विजयदास को भय और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। बड़ा आदर करते थे। सब उसको विजय महाराजा कहकर पुकारते।

यद्यपि वह भोग-विलास में रह सकता था, परन्तु उसका मन वैराग्य के प्रति झुक रहा था। वह अच्छी कविता कर सकता था। इसलिए जब कभी उसे समय मिलता, तो वह तत्वपूर्ण पद लिखता। उसके पद पढ़कर बैरागी आनन्दित होते। थोड़े दिनों में, विजयदास के पद सारे देश में प्रचलित हो गये। और उसका नाम भी देश पर में मशहूर हो गया।

हरिद्वार में, एक मठ में विज्ञानचन्द्र नाम का एक तत्त्वज्ञानी आया। वह सन्यासियों के गीत सुनकर बड़ा खुश हुआ। "इन गीतों को किसने लिखा है? ये कहाँ रहते हैं?" उसने कई से पूछा। उसे मालूम हुआ कि उन गीतों के लेखक का नाम विजयदास था और वह दिल्ली में रहा करता था। विज्ञानचन्द्र ने उस तत्ववेत्ता से मिलना चाहा। वह हरिद्वार से दिल्ली पहुँचा।

"विजयदास नाम का तत्ववेत्ता कहाँ रहता है?" विज्ञानचन्द्र ने कई से पूछा। पर कोई भी उसे कुछ न बता पाया। दिल्ली नगर बहुत बड़ा है। उसमें बहुत-से तत्ववेत्ता रहते हैं। उनके बारे में, आम जनता को कुछ नहीं मालूम होता। महामन्त्री विजयदास महाराज को सब

जानते थे। पर विज्ञानचन्द्र यह न जानता था कि वह ही विजयदास था।

"आश्चर्य की बात है कि इतने बड़े तत्ववेत्ता को इस नगर में कोई नहीं जानता है?" सोचते हुए, विज्ञानचन्द्र ने सारी दिल्ली छान ली। पर कोई फायदा नहीं हुआ। एक दिन वह एक मठ के समीप से जा रहा था कि उसको अन्दर से विजयदास का एक गीत सुनाई दिया। तुरन्त उसने मठ के अन्दर जाकर सन्यासियों से पूछा-"क्या आप जानते हैं, इस गीत के रचयिता तत्ववेत्ता कहाँ रहते हैं?"

"वह विजय महाराजा है। वे दिल्ली सम्राट के महामन्त्री हैं। किले में उनका महल है, वहाँ जाकर उन्हें देखने की कोशिश की जा सकती है।" सन्यासियों ने कहा।

विज्ञानचन्द्र को उनकी बातों पर विश्वास न हुआ। तत्वज्ञानी भला मन्त्री कैसे हो सकता है? उनको सब महाराजा कहकर क्यों बुलाते है? इसमें जरूर कोई न कोई रहस्य है।

इस रहस्य को जानने के लिए, विज्ञानचन्द्र सीधे, विजय महाराज के महल के





पास गया। वहाँ द्वार पालक से उसने कहा-"मैं महामन्त्री को एक बार देखना चाहता हूँ।" द्वार पालक ने हँसकर कहा-"वह असम्भव है। राजा-महाराजा ही उनके दर्शन के लिए सप्ताहों यहाँ पड़े रहते हैं। फिर साधारण सन्यासी को उनके दर्शन कैसे मिल सकते हैं?"

"यह विजयदास बड़ा ठग है। यहाँ महाराजाओं के भोग-विलास में जीवन व्यतीत करता है और वैराग्य के बारे में पद लिखता है।" विज्ञानचन्द्र ने मन ही मन सोचा। उसने निश्चय कर लिया कि उससे बातचीत करके ही वह वहाँ से जाएगा।

"जब तक मैं तुम्हारे मन्त्री के दर्शन नहीं कर लूँगा, मैं यहीं रहूँगा। जाकर यह बात उनको कह दो।" उसने द्वार पालक से कहा।

पहले द्वार पालक ने उसकी कोई परवाह न की। पर जब सन्यासी वहाँ से न हिला तो उसने हिम्मत करके, डरते डरते, महामन्त्री से उस सन्यासी के बारे में कहा। "दो दिनों से यह बात मुझसे क्यों नहीं कही? तुरन्त उनको अन्दर ले आओ।" महामन्त्री ने कहा।

विज्ञानचन्द्र अन्दर पहुँचा तो महामन्त्री सोने के झूले में मसनद लगाकर, झूल रहा था। दासी उन पर चामर झल रही थी। बड़े बड़े राज कर्मचारी हाथ जोड़कर दूर खड़े थे। महामन्त्री कोई पत्र देख रहा था।

दरवाजे के पास खड़ा होकर विज्ञानचन्द्र ने गुस्से में पूछा-"क्या तुम ही वह विजयदास हो जो वैराग्य गीत लिख कर प्रचार करते हो?"

महामन्त्री ने सिर उठाकर कहा- "जी, हाँ स्वामी जी! आइये, पधारिये। उस आसन पर कृपया बैठिये।"

"तत्वज्ञानी का ढोङ्ग करनेवाले तुम जैसे के लिए ही ये आसन हैं, मुझ जैसे वास्तविक ज्ञानियों के लिए नहीं। इस तरह विलास में जीवन व्यतीत करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती!" विज्ञान चन्द्र ने पूछा।

"स्वामी! आपस से कौन-सी बात छुपी है! यह सुख प्रारब्ध है।" विजयदास ने कहा।

विज्ञानचन्द्र ने चकित होकर पूछा- "सुख प्रारब्ध का क्या मतलब है?"

"कष्टों की तरह, सुख भी प्रारब्ध के अनुसार आते हैं। हम उनसे बच नहीं सकते। उनसे अनासक्त होकर ही ज्ञानी को रहना चाहिये।" विजयदास ने कहा।

"मुझे धोखा दे रहे हो। मैं तुम्हारा सुख प्रारब्ध हटा सकता हूँ।" विज्ञान चन्द्र ने कहा।

"तो कृपा करके वही कीजिये। इन सुखों को मैंने स्वयं कोशिश करके नहीं पाया है। इन्हें चाहता भी नहीं हूँ।" विजयदास ने कहा।

उस दिन रात को विज्ञानचन्द्र ने विजयदास को अलग बुलाकर कहा-



"बिना किसी को कहे, जैसे हो वैसे ही मेरे साथ चले आओ।"

"अच्छा, महाराज, मैं चलता हूँ।' विजयदास ने कहा।

आधी रात के समय दोनों निकले। सवेरे होते होते, वे शहर से बहुत दूर निकल गये। विज्ञानचन्द्र ने महामन्त्री को भूखा-प्यासा दुपहर तक चलाया। कड़ी धूप थी। एक जङ्गल में, एक बड़ा बढ़ का पेड़ था।

"तुम उस बढ़ के पेड़ के नीचे रहो। मैं पास ग्राम में भिक्षा माँगकर लाता हूँ।

हम भोजन करके फिर चलेंगे।" कहकर विज्ञानचन्द्र चला गया। क्योंकि रात भर नींद न थी, और चलने की भी आदत न थी, छाया में जाते ही, विजयदास को नींद आ गई। यह ऊबड़-खाबड़ जमीन पर ही आराम से सोने लगा।

विज्ञानचन्द्र के चले जाने के बाद एक बड़ा कारवाँ उस तरफ़ से गुज़रा। वह कारवाँ नेपाल देश के राजा का था। वह एक बहुत ही आवश्यक काम पर महामन्त्री से मिलने दिल्ली जा रहा था।

वह कारवाँ भी पिछला पड़ाव छोड़कर सवेरे से चला आ रहा था। दोपकर हो गई थी। पर कहीं आराम करने के लिए छाया न मिली थी। आखिर वे भी बढ़ के पेड़ को देखकर वहाँ पहुँचे।

पेड़ के नीचे सोते हुए विजयदास को देखकर, नेपाल के राजा ने उसे पहचान लिया। तुरन्त उसने, जहाँ विजयदास सोया हुआ था, अपना तम्बू गड़वा दिया और नौकरों से उठवाकर उन्हें अपने गद्देदार विस्तरे पर सुला दिया। चारों ओर गुलाब जल छिड़का गया। पंखों का भी



प्रबन्ध किया गया। वह बग़ल में एक कुर्सी पर बैठ गया, और महामन्त्री के जागने की प्रतीक्षा करने लगा। इतना सब होने पर भी विजयदास की नींद न टूटी थी।

विज्ञानचन्द्र, भिक्षा लेकर जब वापिस आया तो उसे बढ़ के पेड़ के नीचे कई तम्बू, घोड़े, और हाथी दिखाई दिये। हथियार लेकर सैनिक इधर उधर गश्त लगा रहे थे। एक तरफ़ खाना बनाने के लिए चड़ा चूल्हा था।

विजयदास कहाँ गया और ये तम्बू किसके हैं? विज्ञानचन्द्र न समझ सका। उसने सन्देह किया कि उसके जाते ही, विजयदास ने ये सब मँगवाये होंगे। फिर उसने सोचा कि यह सम्भव न था।

उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह यूँ ही खड़ा था कि नौकरों ने आकर कहा-"यह नेपाल राजा का पड़ाव है। तू कौन है! जा, जा।"

"मैं बिजयदास की तलाश कर रहा हूँ।" विज्ञानचन्द्र ने कहा।

"वे अभी तक सोकर नहीं उठे हैं। हमारे महाराज भी उनसे बातचीत करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके



दर्शन अभी नहीं हो सकते।" सैनिकों ने कहा।

उसी समय, आँखें मलता हुआ विजयदास उठा। उसे सामने नेपाल राजा दिखाई दिया। दोनों गले मिले।

"आप कब आये हैं? आपने मुझे क्यों नहीं उठाया? मेरे साथ एक सन्यासी थे। वे कहाँ हैं?" विजयदास ने पूछा।

नेपाल महाराजा ने अपने सैनिकों को बुलाकर आज्ञा दी "अगर कहीं यहाँ आस-पास कोई सन्यासी हो, तो उनको यहाँ बुला लायो।"

जल्दी ही, वे विज्ञान चन्द्र को नेपाल राजा के तम्बू में लाये। उसे, विजयदास बड़े बड़े मोटे गद्दों पर बैठे दिखाई दिया। नेपाल का महाराजा स्वयं उन पर पंखा कर रहा था। विज्ञान चन्द्र को देखते ही, विजयदास ने खड़े होकर कहा-

"स्वामी! आपके जाने के बाद मुझे गहरी नींद आ गई थी। जब में उठा तो मैं इन गद्दों पर सो रहा था। ये नेपाल के महाराजा हैं। मैं यह भी नहीं जानता कि ये कब आये हैं। क्या हम चल सकते हैं?"

नेपाल के महाराज ने हैरान होकर कहा-"मैं आपसे मिलने के लिए अपने देश से चला आ रहा हूँ। आप कहाँ जा रहे हैं?"

"नहीं नहीं, में ही जाता हूँ। में सब जान गया हूँ। मैं तुम्हें कुछ सिखाना चाहता था। पर मुझे ही तुम से कुछ सीखना पड़ा। सुख प्रारब्ध को भोगे बग़ैर नहीं रहा जा सकता। भोगो, तुम महाज्ञानी हो। मुझे भी तुमने ज्ञान-भिक्षा दी है।" कहता हुआ विज्ञान चन्द्र अपने रास्ते पर चुपचाप चला गया।



CHANDAMAMA (Hindi) MAY 1957 Regd. No. M. 5452



मथन - सुन्दरी